शीराज़ा

हिन्दी

जे. एंड के. अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू

आवरण : आशुतोष सप्रू

प्रकाशक : मुहम्मद यूसुफ़ टेंग, सेक्रेटरी, अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़ जम्मू—180001.

मुद्रक : कान्ति ऑफसेट प्रिंटिंग हाऊस, सरवाल, जम्मू—180005.

इस अंक में—

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं उनमें सम्पादकीय सहमति अनिवार्य नहीं ।

लेख

हिन्दी की कुछ श्रेष्ठ व्यंग्य कविताएं

□ रवीन्द्र नाथ त्यागी

उर्दू में—क्या गद्य और क्या पद्य—दोनों में श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य लिखने की एक परंपरा रही है। इकबाल, हाली और ग़ालिब जैसे बड़े कवियों ने भी हास्य और व्यंग्य से परिपूर्ण उच्चकोटि की कविताएं लिखीं। 'दाग़' देहलवी उर्दू के 'शरीर' कवि माने जाते हैं और 'अकबर' इलाहाबादी तो अपनी हास्य-व्यंग्य से परिपूर्ण कविताओं के कारण इतने प्रख्यात हुए कि लोग उनकी उच्चकोटि की गंभीर कविताओं को जैसे भूल ही गए। शौकत थानवी (जो मुख्यत: एक गद्य लेखक थे) राजा मेंहदी अली खान, सैयद मुहम्मद जाफ़री, मजीद लाहौरी, गुलाम अहमद फ़ुर्कत, इस्सत देहलवी, ज़रफ़ लखनवी, अमीर जाफ़री, वाही, अफ़ज़ल परवेज, काज़िव माल्वी, मिस्टर देहलवी, दिलावर फ़िगार, नज़ीर अकबराबादी, सुल्तान अहमद 'शहबाज़', जगत इलाहाबादी, वजानत झंझानवी, सैयद ज़मीर जाफ़री, मजीद लाहौरी, 'वेढब' बदायूनी, अब्दुल वादी 'आसी', हरिचंद अख्तर, ज़रीफ़ जबलपुरी, ज़रीफ देहलवी, अहमक फफूंदवी, रियाज़ खैराबादी और हाजी लकलक के कलाम में जो लुत्फ़ है, जो मज़ा है और जो चोट है—उसे कोई पाठक कभी नहीं भूल सकता। हाजी लकलक तो मुझे बहुत प्रिय हैं: सुन के हाजी का कलाम आपको आएगी हंसी, मिडिल पास है कोई गंवार नहीं।

यह दुख की बात है कि पिछले पच्चीस तीस वर्षों में हिन्दी गद्य में तो काफ़ी हास्य-व्यंग्य लिखा गया—और उच्चकोटि का लिखा गया—पर कविता की स्थिति हास्यास्पद ही बनी रही। यूं काफ़ी लोग हैं जो हास्य तुकबंदियां और चुटकलों को मंच पर सुना कर लाखों रुपया कमाते हैं और विदेश घूमते हैं पर बेढब बनारसी के बाद स्तरीय व्यंग्य कविता

नहीं के बराबर ही लिखी गई। बेढब जी शायद हिंदी के अंतिम पेशेवर श्रेष्ठ हास्य कवि थे। वेणी उनकी देखिए लंबी ललित ललाम, जैसे कोई वाक्य हो बिना पूर्ण-विराम। हिंदुस्तानी गोद में यूं अंग्रेज़ी मेम, सोने की तस्वीर पर आबनूस का फ्रेम।

जैसे गद्य में व्यंग्य-लेखन के जनक भारतेंदु हरिश्चंद्र हैं, ठीक वैसे ही हिंदी काव्य में व्यंग्य के जनक संत कबीर हैं। तुलसीदास के लक्ष्मण-परशुराम संवाद, शिवजी की वरयात्रा व रावण-अंगद संवाद बेहद हास्यपूर्ण हैं। रीतिकालीन कवियों की अतिशयोक्तियां भी काफ़ी मज़ेदार हैं। आधुनिक हिंदी कवियों ने भी कुछ बेहद श्रेष्ठ व्यंग्य कविताएं लिखी हैं जिनमें से कुछ मैं यहां देता हूं। कबीर, निराला और अज्ञेय की व्यंग्य-कविताओं पर मैं अलग से तीन लेख लिख चुका हूं और इस कारण उनको मैं इस परिचर्चा में छोड़ता हूं।

सब से पहले मैं नागार्जुन को लेता हूं। मेरा सौभाग्य है कि उनसे मेरा परिचय बहुत वर्षों पूर्व तभी हो गया था जब मैं प्रयाग विश्वविद्यालय में पढ़ता था। धीरे धीरे वह परिचय घनिष्ठ होता गया। अब तो स्थिति यह हो गई है कि उनसे मिले कई वर्ष हो गए मगर ऐसा लगता है कि वे मेरे पास ही बैठे हैं, बतिया रहे है और ठहाके पर ठहाका लगा रहे हैं। "जो वस्तु औरों की संवेदना को अछूती छोड़ जाती है, वही नागार्जुन के कवित्व की रचना-भूमि है। इस दृष्टि से काव्यात्मक साहस में नागार्जुन अप्रतिम हैं। कबीर, तुलसीदास और निराला के बाद हिंदी भाषा की विविधता और समृद्धि का ऐसा सर्जनात्मक संयोग नागार्जुन में ही दिखायी देता है। उनमें लोकप्रियता और कलात्मकता का जो संतुलन और सामंजस्य देखने को मिलता है वह अन्यत्र नहीं मिलता।" मैं उनकी दो व्यंग्य कविताएं यहां देता हूं जो मुझे बेहद प्रिय हैं :

अकाल के बाद

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त

दाने आये घर के भीतर कई दिनों के बाद
धुआं उठा आंगन के ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठीं घर भर की आंखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलायी पांखें कई दिनों के बाद

चौराहे के उस नुक्कड़ पर

चौराहे के उस नुक्कड़ पर
कांटों का बिस्तरा बिछा कर

सोया साधू दाढ़ी वाला
लोग तमाशा देख रहे हैं
अपनी धुन में आते जाते।
दिन के दस बजने वाले हैं
वक्त हो गया है दफ़्तर का
सबके पैरों में फ़ुर्ती है
लेकिन यह आ गया कहां से!
कांटों पर नंगा सोया है
ठिठक गया मैं लगा देखने
उस औघड़ बाबा के करतब
नेत्र बंद थे, बदन अडिग था
शरशय्या पर चित्त लेटा था
दर्शक पैसे फेंक रहे थे…

सेठों की गलियों का नुक्कड़
कांटों पर लेटा है फक्कड़
चमक रहे पैसे, दो पैसे
और पांच पैसे, दस पैसे
जैसी श्रद्धा सिक्के वैसे
निकल रहे हैं जैसे तैसे
कांटों पर सोया है कैसे
नागफनी पर गिरगिट जैसे
श्रद्धा का तिकड़म से नाता
जय हे भिक्षुक, जय हे दाता
पियो संत हुगली का पानी
पैसा सच है, दुनिया फ़ानी

डॉ० प्रभाकर माचवे हिंदी के चलते-फिरते विश्वकोष हैं। उन्होंने न जाने कितनी विधाओं में लिखा और जो कुछ भी लिखा वह प्राय. शानदार ही लिखा। मैं उनसे दो बार मिला हूं पर जो स्नेह, फक्कड़पन, विनोद और आत्मीयता इनमें देखी वह अब हिंदी में समाप्त होती जा रही है। उनकी एक मार्मिक कविता यहां देता हूं :

नये कवि के प्रति

तो,
'श्री' या 'वि'— या जो भी तुम्हारा नाम हो, सुनाओ
दो साल भारत के बाहर मैं रहा, क्या-क्या हुआ यहां?

हिन्दी कविता से जैसे मैं कट सा ही गया
— वैसे ही कवि सम्मेलन होते रहे, जनता 'हू-हा' करती रही
नयी कविता पर गालियां वैसी ही बरसीं
और फिर भी वह छपती रही,
— वैसे ही नए-पुराने खेमों में भगदड़ मची
वैसे ही कई आम्नाय जुटे, मठ टूटे, घाट ढहे, राख बिछी
नाव कोई ठांव नहीं बंधी बची :
—क्या करते हो ?

बोले :
एक अखबार में था, अब खाली हूं
एक प्रकाशक के यहां कुछ दिनों रहा, अब खाली हूं
अदबी इदारों में नौकरी नहीं मिली
कहा गया — नये कवि हैं बेतुके
टी-हाउस में बैठता हूं, सबको गरियाता हूं,
(मैं खुद ही एक गाली हूं)
फ्री-लांसिंग, किसी एम्बैसी से कुछ अनुवाद
एक दिन खाना, चार दिन फाका
अब मित्र ने कहा है, एक पाकेट बुक सिरीज़ का उपन्यास लघु-लघुतम
लिख डालो — सिगरेट है ?

दो साल, दस साल
ऐसे ही बीत-बीत जाएंगे, जेब रीत-रीत जाएगी,
पढ़ाते रहेंगे विश्वविद्यालयों में लोग ;
'हिन्दी में आया था प्रयोगवाद — एक रोग'
हम सब ने घेर कर उसे मार भगा दिया, ऐसा डंडा लगा दिया
भारतीय संस्कृति अब खतरे में नहीं है, 'शिखा' सेफ़ है
पढ़ बेटा हनुमान-चालीसा
कर रिसर्च पिरे हुए गन्नों के चोयधों पर
अखबार वाले भी दोस्तों की घिसी पिटी चीजें ही छापेंगे।
पूछते रहेंगे आलोचक
हिंदी कविता में गति-रोध युग आया था ?
हाय, ऐसा क्यों हुआ ?

नये कवि, सवैये-घनाक्षरियां लिखो हास्य रस की
(घटिया और फूहड़ हों)

या उर्दू से नकल टीप, सिनमई गीतों से पनियल कुछ गीत लिखो,
बेकार बात तुम करते हो रैंम्बो की, रिल्के की
महाभारत उठाओ, पांच साला योजना पर खंड काव्य लिखो,
यदि किसी मंत्री की भूमिका हो, अत्युत्तम
कम से कम प्रादेशिक पुरस्कार तो तुम्हारे हैं···

विद्यानिवास मिश्र हिंदी के शीर्षस्थ निबंधकार हैं। मैं उनका मुरीद इस कारण भी हूं क्योंकि उनमें विनोद-वृत्ति काफ़ी है। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि वे संस्कृत वगैरा के साथ साथ फ़ारसी पर भी असाधारण अधिकार रखते हैं और उनकी एक कविता संग्रह भी निकला है। उसी संग्रह में से एक मार्मिक कविता यहां देता हूं :

पर्यटकों का भारत

एलोरा -- हम बेचते हैं
अजंता हम बेचते हैं
खजुराहो हम बेचते हैं
सारा भारत बिकाऊ है
हम इसे समूचा वेच सकते हैं

पधारिये, तशरीफ़ लाइए, बैठिए
इत्मीनान से देखिए
इधर से देखिए, उधर से देखिए
ऊपर से देखिए, नीचे से देखिए
हां हां हाथ लगाइए, आपके हाथ की मैल
इन पुरानी चीजों पर पालिश का काम करेगी।
हम हाथ मींसते है, हां दूसरे शब्दों में जोड़ते हैं
मुस्कान लाते हैं
रुपये, रुपये बस असली चीज तो रुपया है ··

हम सभ्य भारतीय —हमें कार चाहिए
हम सभ्य भारतीय — हमें सुलगदानी लाइटर दरकार है
हम सभ्य भारतीय— ट्रांजिस्टर-प्रेमी हैं
हम सभ्य भारतीय — फ़िल्मी गानों से शादी की महफ़िल गुंजाते हैं
हमें आता है, झुक कर करना सलाम
हमें आती है शान्तिनिकेतन मुद्रा
नमन की, अर्थहीन स्थिति की,
हमारी संस्कृति पुरातन है

हम आधुनिक हैं, विश्वभावन शील है,
जी हां, यह भारत जो बिकाऊ है
वह हमारा ही भारत है…

'धूमिल' से मैं कभी नहीं मिल पाया हालांकि उनकी कविताओं ने मेरे मर्म को झकझोर दिया। उनकी कुछ कविताओं के टुकड़े आपकी सेवा में प्रस्तुत करता हूं। इन्हें पढ़ कर आप मुझसे सहमत होंगे कि वे सच्चे 'अकवि' थे :

कविता

हत्या में अब लोगों की रुचि नहीं
वह किसी गंवार आदमी की ऊब से
पैदा हुई थी और
एक पढ़े लिखे आदमी के साथ
शहर चली गई

एक संपूर्ण स्त्री होने के पहले ही
गर्भाधान की क्रिया से गुज़रते हुए
उसने जाना कि प्यार
घनी आबादी वाली बस्तियों में
मकान की तलाश है :
लगातार बारिश में भीगते हुए
उसने जाना कि हर लड़की
तीसरे गर्भपात के बाद
धर्मशाला हो जाती है और कविता
हर तीसरे पाठ के बाद—
नहीं, अब वहां कोई अर्थ खोजना व्यर्थ है :
लो, यह रहा तुम्हारा चेहरा
जो जुलूस के पीछे गिर पड़ा था

बीस साल बाद

हर तरफ़ ताले लटक रहे हैं
दीवारों से चिपके गोली के छर्रों
और सड़कों पर बिखरी जूतों की भाषा में
एक दुर्घटना लिखी गई है
संत और सिपाही में

देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य कौन है ?
क्या आज़ादी सिर्फ़ तीन थके रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है ?

मोचीराम

मैं जानता हूं कि 'इनकार से भरी हुई चीख़'
और 'समझदार चुप'
दोनों का मतलब एक है

मुझे हर वक्त यह ख़याल रहता है कि जूते
और पेशे के बीच
कहीं न कहीं एक अदद आदमी है
जिस पर टांके पड़ते हैं
जो जूते से झांकती हुई अंगुली की चोट
छाती पर
हथौड़े की तरह सहता है

बाबू जी, सच कहूं तो मेरी निगाह में
न कोई छोटा है
न कोई बड़ा है
मेरे लिए हर आदमी एक जोड़ी जूता है
जो मेरे सामने
मरम्मत के खड़ा है···

दुष्यंत और मैं हाईस्कूल में साथ साथ पढ़ते थे। जब मैट्रिक्यूलेशन की परीक्षा के फ़ार्म भरे जा रहे थे तो उसने मेरे नाम के बाद 'त्यागी' जोड़ा और मैंने उसे 'दुष्यंतनारायण' से 'दुष्यंतकुमार' किया। बी० ए० में हम दोनों फिर सहपाठी हो गए। इसके बाद हम काफ़ी दिनों के लिए बिछुड़ गए। हां, अलबत्ता 'सूर्य का स्वागत' की प्रति देने वह मेरी कोठी पर मेरठ ज़रूर आया था। फिर वह मध्यप्रदेश चला गया जहां उसने 'साए में धूप' पाल कर दिखा दी। उसकी एक दिलचस्प कविता यहां देता हूं जो इन दिनों के नए कवियों के हुलिए पर काफ़ी प्रकाश डालती है :

इनसे मिलिए : नखशिख

पांवों से सिर तक जैसे एक जनून
बेतरतीबी से बढ़े हुए नाख़ून,

कुछ टेढ़े मेढ़े बेंगे दाग़िल पांव
जैसे कोई एटम से उजड़ा गांव,
रखने ज्यों मिले हुए रखे हों बांस
पिंडलियां कि जैसे हिलती डुलती कांस,
कुछ ऐसे लगते हैं घुटनों के जोड़
जैसे ऊबड़ खाबड़ राहों के मोड़,
गट्टों सी जंघाएं निष्प्राण मलीन
कटि, रीतिकाल की सुधियों से भी क्षीण,
छाती के नाम महज़ हड्डी दस बीस
जिस पर गिन चुन बाल खड़े इक्कीस,
पुट्ठे हों जैसे सूख गए अमरूद
चुकता करते करते जीवन का सूद,
बाहें ढीली ढाली ज्यों टूटी डाल
अंगुलियां कि जैसे सूखी हुई पुआल,
छोटी सी गरदन रंग बेहद बदरंग
हर वक्त पसीने की बदबू का संग,
पिचकी अमियों से गाल लटके से कान
आंखें जैसे तरकश के खुट्टल बान,
माथे पर चिंताओं का एक समूह
भौंहों पर बैठी हरदम यम की रूह,
तिनकों से उड़ते रहने वाले बाल
विद्युत्-परिचालित मखनातीसी चाल,
बैठे तो फिर घंटों जाते हैं बीत
सोचते प्यार की रीत, भविष्य, अतीत

कितने अजीब हैं इनके भी व्यापार
इनसे मिलिए, ये हैं दुष्यन्तकुमार

आत्म-परिचय की दिशा में मेरे पुराने आत्मीय लक्ष्मीकांत वर्मा किसी से पीछे नहीं रहे। वे कहते हैं :

श्रीमान्
श्री श्री श्री लक्ष्मीकांत ;
बाल बिखरे
गाल चिपके
निष्प्रभ···क्लान्त ;

आदि से अंत तक
केवल अतुकान्त ;
श्रीमान्
श्रीयुत
श्री श्री श्री लक्ष्मीकांत

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना से खाकसार की कभी नहीं बनी मगर हम दोनों एक दूसरे की रचनाओं के बराबर प्रेमी रहे। उनमें शक्ति भी थी और बेकार का दीर्घसूत्री अहंकार भी था। इनकी कुछ व्यंग्य कविताएं इस प्रकार हैं :

दंगे के बाद

जिसे तुम मन्दिरों में मस्जिदों में
चिड़ियाघर में खूंखवार जानवर सा
ठंडे गोश्त की तरह चबाते हो :
एक ग़लीज़ मुख में
ईश्वर का नाम
झिझोड़े ठंडे गोश्त सा :
ऐसा होता क्यों है ?
धर्मग्रंथ छूकर भी
किसी आदमी के हाथ
जंगली जानवर के पंजे में बदल जाते हैं
ज़हरीले नाखूनों से वह
नोंचने लगता है
इंसान की सूरत···

ग़रीबी हटाओ

'ग़रीबी हटाओ' सुनते ही
वे एक बहुत बड़ी रोटी बेलने लगे
काफी बेल लेने के बाद
उन्हें पता चला कि तवे छोटे हैं
और चूल्हे नदारद
फिर वे हाथ पर हाथ रख कर बैठ गए
आटे में जब लग गई फफूंद
तब वे उससे ऐसी दवा तैयार करने की सोचने लगे
जिससे कि भूख मिटे

यह मेरा सौभाग्य है कि बच्चन जी की मुझ पर कृपादृष्टि रही। अपनी 'मधुशाला' और रोमांटिक कविताओं के साथ-साथ उन्होंने कभी-कभी उत्कृष्ट व्यंग्य-कविताएं भी लिखी हैं। नमूना हाज़िर है :

सन् 2069 में हिंदी पाठक

बड़ा दुख
दुर्भाग्य बड़ा
इस कवि का मात्र अभिनंदन-ग्रंथ ही मिला।
कोई पुस्तक नहीं
किसी भी पुस्तकागार या अभिलेखागार में,
और किसी को याद नहीं
दो चार पंक्तियां भी
इस कवि की।
कितने नकली कितने छिछले
गलत मूल्यों का होगा युग वह —
सब कुछ मिलेगा
नहीं मिलेगी कबि की कविता

एक लोकगीत की धुन पर

आज महंगा है सैंया रुपैया
रोटी न महंगी
लहंगा न महंगा
महंगा है सैंया रुपैया
गांधी न नेता
जवाहर न नेता
नेता है सैंया रुपैया

बहुत दिनों पहले कभी मैंने भारतभूषण अग्रवाल की 'गीत की खोज' नाम की एक रचना पढ़ी थी। उसको पढ़ते ही मैं उनके दर्शन करने को उत्सुक हो उठा था। काफ़ी वर्षों के बाद दिल्ली में भेंट हुई। पहली मुलाकात ही में ऐसा लगा जैसे कि हम एक दूसरे को वर्षों से जानते हों। इतना सरल, इतना निश्छल और इतना खुशमिज़ाज आदमी देखने को फिर नहीं मिला। मेरी अंतिम भेंट उनसे अशोका-होटल में हुई थी जहां काफ़ी लोग राष्ट्रपति का कोई भाषण सुनने गए थे। वहीं मैंने अपने लड़के का उनसे परिचय करवाया था जिसे उन्होंने बड़े प्यार से शाबाशी दी थी। यूं तो उनकी काफ़ी हास्य कविताएं

'कागज के फूल' नाम की किताब में छपीं पर उनकी ज्यादा मार्मिक कविताएं उस पुस्तक के बाहर हैं जिनमें से कुछ मैं यहां देता हूं :

कनाट-प्लेस

गाड़ियों की गड़गड़ाहट
साड़ियों की सरसराहट
नाड़ियों की हरहराहट

अनुपस्थित लोग

ये बेयरे, ये वेटर
चाभीदार खिलौनों से
चलते, झुकते या थमते हैं
वे सब के सब
यहां नहीं कहीं और हैं :
लजाओ मत !

सामने बैठा बाबू
'बास' के किस्से सुना रहा है
वह यहां नहीं, दफ़्तर में है :
चारों तरफ़ के ये अनगिनत लोग
अपने दफ़्तरों को साथ लिए
खाते पीते, सोते जागते हंसते रोते हैं
इन्हें जो दफ़्तरों से मुक्ति दे
वह दफ़्तर अभी नहीं खुला
और वे कामरेड ?
ये यहां नहीं
ये चीन या रूस में है ;
ये जर्नलिस्ट
किसी वी० आई० पी० कांफ्रेंस में हैं,
ये प्रोफ़ेसर
टैक्स्ट-बुक कमेटी में हैं
ये बिज़िनेस-मैन
इंकम-टैक्स के वकील के यहां हैं,
ये संसत्सदस्य
अभिनंदन समारोह में हैं,

और ये शोख़ कुमारी
जिसका पल्लू रह-रह लहराता है
सिनेमाघर में है —

लजाओ मत सुन्दरी,
तुम, मैं
तुम और मैं
और यहां कौन है ?

विदेह

और तब धीरे धीरे ज्ञान हुआ
भूल से मैं सिर छोड़ आया हूं दफ़्तर में
हाथ बस में टंगे रह गए
आंखें उलझी रह गईं फ़ाइलों में
मुंह टेलीफ़ोन से चिपटा होगा
और पैर—हो न हो क्यू में ही रह गए
तभी तो मैं आज घर आया हूं
एकदम विदेह

सच्चाई

मेनका अस्पताल में नर्स हो गई
विश्वामित्र करने लगे ट्यूशन
उर्वशी ने डांस-स्कूल खोल लिया
नारद बजाने लगे गिटार
और बृहस्पति करने लगे अनुवाद

भवानी प्रसाद मिश्र—जैसे कि मैंने उन्हें पाया एकदम निश्छल, बच्चों की भांति सरल, स्नेह व आत्मीयता से परिपूर्ण व्यक्ति थे। मैं उनसे कई बार मिला। उन्हीं की भांति उनकी कविता भी एकदम स्वाभाविक और अकृत्रिम होती थी। नए कवियों में वे शायद अकेले ऐसे व्यक्ति थे जो गंभीर पाठकों द्वारा भी मनोयोग से पढ़े जाते थे और विशाल जनसमारोहों में भी तन्मयता के साथ सुने जाते थे। "कवि, कविता और पाठक के बीच वैसी आत्मीयता किसी दूसरे हिंदी कवि को नहीं प्राप्त हुई। और लोगों की कविता हर वक्त कविता बनी रहती है। लोग या तो मुग्ध होकर झूमते हैं या फिर वाह वाह करते हैं। भवानी भाई की कविता में लोग होते ही नहीं, वे स्वयं कवि हो चुकते हैं। यही उनका अपनापन है कि कवि और श्रोता का भेद समाप्त हो जाता है।" 'गीत फ़रोश'

उनकी सर्वश्रेष्ठ कविता है ; इसमें इस देश के साहित्यकार की दयनीयता भी उभर कर सामने आती है। और उन लोगों का मुखौटा भी हटता है जो हर बड़े आदमी के दरबारी बनते हैं, विदेशों का दौरा करते है, साहित्य अकादमी वगैरा से पुरस्कार पाते है और बिना किसी विशिष्टता के राजकीय-सम्मान और उपाधियां बटोरते हैं। लीजिए अब आप सचेत होकर बैठिए और उनकी उस कालजयी कविता को सुनिए :—

गीत फ़रोश

जी हां हुज़ूर, मैं गीत बेचता हूं
मैं तरह तरह के गीत बेचता हूं
मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूं

जी माल देखिए, दाम बताऊंगा
बेकाम नहीं है, काम बताऊंगा
कुछ गीत लिखे हैं मस्ती में मैंने
कुछ गीत लिखे हैं पस्ती में मैंने
यह गीत सख़्त सिर दर्द भुलाएगा
यह गीत पिया को पास बुलाएगा

जी, पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको
और बाद बाद में अक्ल जगी मुझको
जी, लोगों ने तो बेच दिया ईमान
जी, आप न हों सुन कर ज्यादा हैरान
मैं सोच समझ कर आख़िर
अपने गीत बेचता हूं
जी हां हुज़ूर, मैं गीत बेचता हूं
मैं किसिम किसिम के गीत बेचता हूं

यह गीत सुबह का हैं, गा कर देखें
यह गीत गज़ब का है, ढा कर देखें
यह गीत ज़रा सूने में लिखा था
यह गीत वहां पूने में लिखा था
यह गीत पहाड़ी पर चढ़ जाता है
यह गीत बढ़ाए से बढ़ जाता है
यह गीत भूख और प्यास भगाता है
जी, यह मसान में भूत जगाता है
यह गीत भुवाली की हवा हज़ूर

यह गीत तपेदिक की है दवा हुज़ूर
जी, और गीत भी है, दिखलाता हूं
जी, सुनना चाहें आप तो मैं अब गाता हूं

जी छंद और बेछंद पसन्द करें
जो अमर गीत हों और वे जो तुरंत मरें
ना, बुरा मानने की इसमें क्या बात
मैं ले आता हूं क़लम और दावात
इसमें से भाये नहीं, नए लिख दूं
जी नए चाहिए नहीं, नए लिख दू
मैं नए पुराने सभी तरह के
गीत बेचता हूं
जी हां हुज़ूर मैं गीत बेचता हूं
मैं किसिम किसिम के गीत बेचता हूं

मैं गीत जनम का लिखूं, मरण का लिखूं
मैं गीत जीत का लिखूं, शरण का लिखूं
यह गीत रेशमी है, यह खादी का
यह गीत पित्त का है, यह वादी का
कुछ और डिज़ाइन भी हैं, यह इलमी
ये लीजे चलती चीज़, नयी फ़िलमी
यह सोच-सोच कर मर जाने का गीत
यह है दुकान से घर जाने का गीत

जी नहीं, दिल्लगी की इसमें क्या बात
मैं लिखता ही तो रहता हूं दिन रात
जी, तरह-तरह के बन जाते हैं गीत
जी, रूठ रूठ कर मन जाते हैं गीत
जी, बहुत ढेर लग गया हटाता हूं
गाहक की मर्ज़ी ऐसी तो मैं जाता हूं
या भीतर जाकर पूछ आइए आप
है गीत बेचना वैसे बिलकुल पाप
क्या करूं मगर लाचार
हार कर गीत बेचता हूं :
जी हां हुज़ूर मैं गीत बेचता हूं
मैं तरह तरह के गीत बेचता हूं
मैं किसिम किसिम के गीत बेचता हूं···

हंसों की वाणी इतनी देर सुनने के बाद यदि थोड़ी सी वाणी बगुले को भी सुन ली जाए तो शायद वह आपको उतनी बुरी नहीं लगेगी। मेरा अभिप्राय एक कविता अपनी सुनाने से है जिसे आप सहन कर लें। यह कविता बच्चन जी को पसन्द आयी और उन्होंने इसे अपने द्वारा संपादित "हिन्दी की प्रतिनिधि श्रेष्ठ कविताएं" नामक संग्रह में शामिल किया। कविता इस प्रकार है :

अंधा पड़ाव

ड्राइंग रूम में वह नहीं आया
उसके चमचमाते जूते आए,
जब मिलाया उसने हाथ
मुलाकात रह गई दस्तानों तक,
जब वह बैठा सोफ़े पर
तो उसकी जगह एक शानदार सूट वहां बैठ गया,
कफ़ों ने पकड़ा काफ़ी का कप
टाई और कालर ने ब्रेकफ़ास्ट किया,
उसके होंठ नहीं हंसे बिल्कुल
सिर्फ़ उसकी सिगरेट चमकी

विदा की जगह हिलता रहा रूमाल :
वह नहीं निकला पोर्च के बाहर
सिर्फ़ उसकी मोटर निकली···

ऊपर जो दर्द भरी व्यंग्य-कविताएं मैंने प्रस्तुत की हैं, उनके रचनाकारों को जो तनाव, यातना, और दुख सहना पड़ा होगा, उसका अनुमान लगाना कठिन है। यहां मैं, जैसी कि मेरी आदत है, आपकी खिदमत में एक शेर पेश करता हूं जो सारी स्थिति का पर्दाफाश करता है :

जो तार से निकली है, वह धुन सबने सुनी है
जो साज़ पे गुज़री है, वो किस दिल को पता है ? □

लेख

आधी दुनिया उत्तरकाशी की

□ पृथ्वीनाथ मधुप

उत्तरकाशी (गढ़वाल, उत्तर प्रदेश) में आकर जितनी निराशा मुझे यहां के अधिकांश निवासियों के भुलक्कड़ स्वभाव, थोथे आश्वासनों, मकान मालिकों के, (जिनके मकानों के कमरे किसी कारागार से बेहतर नहीं) बम्बई महानगर के किराये को भी मात देने वाली दरों, आकाश को छूते पहाड़ों से भी कई गुणा ऊंची महंगाई से हुई उतना ही आकर्षण मुझे इस लघुतम जनपद के सुन्दर एवं शान्तिमय परिवेश में लगा। ऊंचे स्वर से भागीरथ का यशोगान करती वेगमयी तीव्र भागीरथी, उसके किनारों पर शान्ति तथा अध्यात्म की पताकाएं फहराते आश्रमों और उत्तरकाशी के गांवों ने बरबस मुझे अपनी ओर आकृष्ट किया। यहां के ग्रामीण छल-छिद्रों से कोसों दूर सरलता एवं स्नेह की प्रतिमूर्ति हैं। और ग्रामीण महिलाएं तो जैसे स्वयं कर्मठता का पर्याय।

यहां की महिलाओं का पहनावा मैदानी इलाकों में रहने वाली महिलाओं से बिल्कुल भिन्न है। यहां अभी भी साड़ी-ब्लाउज का अधिक रिवाज नहीं। यहां की महिलाएं नंगे सिर नहीं रहतीं। सिर पर साफा-सा बांधे रखती हैं। जिसे गढ़वाली बोली में "सांपा" या "जुलखा" कहते हैं। सांपे की लम्बाई डेढ़-दो मीटर और चौड़ाई पौन मीटर के करीब होती है। ये जो वस्त्र पहनती हैं उसे "बिलोज" तथा "आंगड़ा" कहते हैं। ये दोनों आधुनिक शहरी माहिलाओं के ब्लाउज की फैशनेबुल कटाई से कहीं दूर है। "बिलोज" युवतियां और "आंगड़ा" वयोवृद्ध महिलाएं पहनती हैं। कटि में धोती बांधी जाती है। युवतियों की धोती प्रायः रंगीन या विभिन्न आकर्षक रंगों के छापे की होती है। ढलती उम्र की महिलाएं काले रंग की मोटे कपड़े की चादर बांध लेती हैं। मुझे लगता है कि

तिब्बत की सीमा निकट होने के कारण यह तिब्बती महिलाओं के परिधान का प्रभाव है। धोती के ऊपर कमर पर लाल ऊनी कपड़ा तनिक कसकर लपेटा जाता है। इस कपड़े को 'पठेड़ा' या 'पागड़ा' कहते हैं। 'पठेड़ा' की लम्बाई बारह/तेरह हाथ (हाथ की लम्बाई मध्यमा से कोहनी तक मानी जाती है) और चौड़ाई एक 'बेत' यानी अंगूठे के सिरे से कनिष्टा के सिरे तक होती है। 'पठेड़ा' या 'पागड़ा' गांव में ही हथकरघे पर बुना जाता है। आजकल इसका मूल्य डेढ़-दो सौ रुपये तक का बताया जाता है। 'पागड़ा' या 'पठेड़ा' पहले एक विशेष जाति के लोग ही बुनते थे जिन्हें 'कोलो' कहा जाता है पर आजकल कोई भी ग्रामीण किसान शीतकाल के खाली समय में 'पठेड़े' बुनता है।

प्रत्येक स्थान का पहनावा वहां की जलवायु एवं अन्य आवश्यकताओं के अनुकूल होता है। गढ़वाल में सर्दी भी खूब होती है और गर्मी भी। यहां की धूप बहुत ही चमकीली और चुभने वाली होती है। मुझे लगता है कि धूप के बुरे प्रभाव से बचन के लिए ही यहां की अंगनाएं 'सांपा' बान्धती हैं। घास काटने के लिए महिलाओं को ऊंचे ऊंचे पहाड़ों पर चढ़ना पड़ता है और घास के भारी-भारी खेप वहां से कमर पर ढोने पड़ते हैं शायद इसीलिए कमर-बन्द के तौर यहां की महिलाओं को 'पठेड़' की आवश्यकता है। चौबीसों घण्टे काम से फुर्सत नहीं इसलिए साड़ी के पल्लू को कहां संभालती रहें? दोनों हाथ काम के लिए हर समय मुक्त रहें इसलिए धोती बान्धती हैं।

यहां कन्याओं का विवाह प्राय: तेरह-चौदह वर्ष की आयु में होता है। लड़के के माता पिता अपने पुत्र के लिए उसी कन्या को पसन्द करते हैं जो काम-काज में दक्ष हो यानि जो खेत में काम करने, पशु चराने एवं उनके लिए जंगलों से घास काट कर लाने आदि से लेकर समस्त गृह कार्य आदि करने में प्रवीण हो। मैंने यहां की स्त्रियों को समस्त घरेलू काम, जिसमें धान कूटना, चावलों को फटकना एवं साफ करना भी शामिल है, बच्चों की देखभाल के अतिरिक्त खेतों में धान रोपती, फसल काटती, धान 'मांण्डती' (धान की बालियों से दाने अलग करने के लिए पैरों से मसलती) धान के कट्टों और कभी-कभी बोरों को भी पीठ पर लाद कर ले जाती, ऊंचे पहाड़ों पर घास काटने के लिए जाती और वहां से घास के भारी-भरकम भार को पीठ पर लाद कर लाती महिलाओं को देखा है। इस अथक श्रम के परिणाम स्वरूप यहां की महिलाओं का शरीर थुलथुल नहीं। कड़ी मेहनत से इनका शरीर गठीला और चेहरा आभामय होना चाहिए था पर ऐसा नहीं है। सम्भवत: इसका कारण यह है कि यहां के खेत अधिक उपजाऊ नहीं पथरीले हैं और वर्षा के दिनों में पहाड़ों से इनमें चट्टानें और पत्थर खिसकते रहते हैं।

अपने परम्परागत वेश में यहां की अंगनाएं जब पीठ पर 'घीड़ा/'कण्डा' (एक लम्बी बाल्टीनुमा टोकरी जो रस्सियों के द्वारा पीठ पर लटकाई जाती है) या 'बैंठा' (बड़ा कण्डा) उठाये या कभी-कभी 'सुलेटा' (लम्बा डण्डा) जिसके निचले भाग में 'पगीड़ा' / 'जुलखा' (रस्सियां) बन्धी रहती हैं (और यह घास की खेप बांधने एवं उठाने के काम आता है) लिये हुए किसी ऊंचे पहाड़ की उठान पर, घास लेने के लिए पांच-पांच, दस-दस दलों में चढ़ती हैं।

तो ऐसा लगता है कि वनदेवियों का समूह जंगल में विचरण करने जा रहा है। घास काटते-काटते ये महिलायें कभी-कभी अलग-अलग दिशाओं की ओर बढ़ती हैं। अपने एकाकीपन से मुक्ति पाने और अपने मानसिक उद्गारों को अभिव्यक्ति देने के लिए ये विशेष प्रकार के लोक-गीत गाती हैं। इन लोक गीतों को 'धारो गीत' कहा जाता है। 'धारो गीतों' का विषय प्राय: मैके की याद या प्रणय निवेदन होता है। मुझे बताया गया कि धारो गीत की दो पंक्तियां एक स्थान पर घास काटती युवती या युवक गाता है और इस गीत की अन्य दो पंक्तियां कुछ दूरी पर घास काटती अन्य युवती या युवक गाते हैं। और यह क्रम तब तक चलता है जब तक 'धारोगीत' पूरा गीत समाप्त न हो जाए। यहां यह किंवदन्ती भी प्रचलित है कि 'धारोगीत' पहाड़ों की ऊंची ढलानों पर नहीं गाने चाहिए। यदि कोई गायेगा तो 'मात्री' (परी) उसका हरण कर लेगी। इस किंवदन्ती के पीछे मुझे यह तथ्य लगता है कि यदि कोई ऊंची ढाल पर गीत गायेगा तो निश्चय ही उसका ध्यान बंट जायेगा। ध्यान बंटने से हो सकता है कि वह असावधान हो जाए और फिसल कर लुढ़क जाए और उसका जीवनान्त हो। खैर, यहां उदाहरण के लिए 'धारोगीत' की कुछ पंक्तियां तथा उनका भावानुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है—

बल पीतवा की मेखी ले द्वि बाजू लै दी,
प्यारी भोवा कैना देखी ले सची बोदू भौ।
बल पाणी छिचरोटा ले मैं दूरू पछयाणी,
छोरी तेरू नचरोटा शे सची बोदू भौ॥
बल ढोला कू कसाणू ले मैं भलू लगादूं,
प्यारी तेरू यू हसाणू ले सची बोदू भौ॥

(युवक युवती के प्रति)—आज मधुरतम और सुहानी बातों की मिसरी घोलो,
कल क्या होगा, कौन जानता ? बोलो री। कुछ तो बोलो।
(युवती युवक के प्रति)—चाल तुम्हारी नखरों वाली बहुत दूर से पहचानी,
मुझे पता सब तेरी बातें औ' तेरा नटखटपन भी।
(युवक युवती के प्रति)—तेरे अधरों की मुस्काहट प्यारी लगती सच कहता,
मेरे मन का सुमन अधखिला इससे है खिल-खिल उठता।

बात शादी ब्याह की चल रही थी। अभी भी यहां के गावों में, पढ़े-लिखे परिवारों को छोड़, कोई भी मां-बाप अपने बेटे का विवाह किसी पढ़ी-लिखी लड़की से नहीं करना चाहता क्योंकि इनमें ऐसी धारणा घर कर गई है कि पढ़ी लिखी लड़कियां घर-गृहस्थी, पशुओं एवं खेतों का काम नहीं कर सकतीं। इनकी यह गलत धारणा समय ही इनके मन से धीरे धीरे मिटा पायेगा। खैर, किसी लड़की का चयन करने के बाद लड़के का पिता, चाचा, मामा या कोई अन्य निकट सम्बन्धी लड़की के पिता से मिल कर पण्डित से लड़के तथा लड़की की जन्म कुण्डलियां मिलवाता है। कुण्डलियां मिलने पर लड़के का पिता लड़की के पिता से मिल कर उसकी लड़की का हाथ अपने लड़के के लिए मांगता है। इस रस्म को

'मंगनी' कहते हैं। 'मंगनी' के पश्चात वर एवं वधू पक्ष विवाह का दिन निश्चित करते हैं। विवाह का दिन निश्चित करने को 'दिनपट्टा' कहते हैं दिनपट्टा एक प्रकार का शर्तनामा भी है। इसी दिन यह भी निश्चित किया जाता है कि बारात में कितने लोग सम्मिलित होंगे।

किसी-किसी गांव में यह प्रथा भी है कि बारात में सम्मिलित युवकों एवं दूल्हे के इष्टमित्रों पर वधू पक्ष की युवतियां रंग या पानी फेंकती हैं। कभी-कभी इन युवकों का स्वागत युवतियां बिच्छू बूटी से भी करती हैं। बारातियों के खाने के लिए लगभग पांच-छ: व्यंजन पकाये जाते हैं तथा अपने गांव की बिरादरी वालों को अधिकतर दाल-चावल ही परोसे जाते हैं। बारातियों को नाश्ता या भोजन कराते समय भी वधू पक्ष की युवतियां बारात में सम्मिलित युवकों पर फब्तियां कसती हैं और मीठी-मीठी गालियां देती हैं। 'मंगल गान' के रूप में एक फ़ब्ती की बानगी देखिए—

झलकालू पौणु रीका, झलकालू रीका,
यूं पौणू यनु पूछा टपरांदा केका।
पीतवा की मेखी पौणु पितवा की मेखी,
यूं जंगली पौणु ना मनखी ना देखी॥

अर्थात् :—

पूछो तो इन मेहमानों से
इधर-उधर क्यों ताक रहे ये?
निरे जंगली हैं ये दिखते,
मानव कभी न देखे जैसे॥

बारातियों के स्वागतार्थ लड़की वाले प्रति बाराती बन्द लिफाफे में एक-एक दो-दो तथा कोई पांच-पांच रुपये देते हैं। इस भेंट को 'पिठाई' कहा जाता है।

लड़की के मैके से विदा होने पर मैके वाले उसे अनाज, पशु, बर्तन, दरांती, कुदाल, सन्दूक (लकड़ी या टिन का) और 'एड़सा' (चावल के आटे के घी में तले छोटे-छोटे लड्डू) अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार उपहार स्वरूप देते हैं।

ससुराल जाते समय दुल्हन की डोली दुल्हन के भाई सगे या चचेरे, ममेरे आदि— उठाते हैं। यदि किसी के भाई न हों तो उसकी डोली गांव भाई (गांव के युवक) उठाते हैं। ससुराल पहुंच कर दुल्हन सर्वप्रथम अपनी सास के सात बार चरण-स्पर्श कर प्रणाम करती है। इसके बाद सास अपनी बहू को 'त्यमण्या' आर्शीवाद के रूप में भेंट करती है। 'त्यमण्या' यानि तीन लड़ियों वाली माला जिसमें सोने के तीन दिखने वाले सोने के दाने पिरोये रहते हैं। 'त्यमण्या' की तीनों लड़ियां लाल रंग के डोरे की होती हैं। त्यमण्या यहां की महिलाओं का मंगल-सूत्र है। पहली बार ससुराल आने पर दुल्हन यहां तीन-चार

दिन रहती है। तीन-चार दिन ससुराल में रहने के पश्चात चौथे दिन दुल्हन पति के साथ अपने मैके जाती हैं। वहां तीन-चार दिन रहने के बाद ससुराल लौटती है।

यहां की महिलाओं के मुख्य आभूषण 'नथुली', 'फुल्ली' (लौंग) 'बुलाक' या 'विस्वार' (नथ) मुरके (कान के कुण्डल, तथा 'पौंची' (मोटा कड़ा) आदि होते हैं। ब्याहताओं की 'नथुली' व 'फुल्ली' सोने की होती है जबकि कुंवारी कन्याएं चांदी, पीतल या अन्य धातु की फुल्ली पहनती हैं। 'मुरके' (कान के कुण्डल) कानों के गर्दन की ओर के भागों को छिदवा कर पहने जाते हैं। प्रत्येक कान में कम से कम दस-दस, बारह-बारह मुरके पहने जाते हैं। बांह में पहनी जाने वाली 'पौंची' कम से कम पन्द्रह तोले चांदी की होती है। वयोवृद्ध महिलायें एलिम्यूनियम या श्वेत धातु की पौंची ही पहनती हैं।

लड़की की प्रसूति पर मैके वाले घी तथा अन्य चीजें अपनी लड़की के लिए भेजते हैं। बच्चे के जन्म के पांचवें दिन और किसी गांव में ग्यारहवें दिन बच्चे को कमरे से बाहर लाकर धूप दिखाते हैं। इस रस्म को 'धुपहारी' या 'घाम दिखाना' कहते हैं। धुपहारी या घाम दिखाने के अवसर पर चौलाई, भुने गेहूं और कहीं-कहीं भुने चावल, तिल और गुड़ का मिश्रण छोटे बच्चों को खिलाते हैं। पुत्र के जन्म पर गांव की बिरादरी को दावत भी दी जाती है। यदि कोई स्त्री सन्तानोत्पत्ति के अयोग्य हो तो कोई पति उस पत्नी को त्यागकर दूसरी महिला से विवाह करता है और कोई-कोई व्यक्ति सन्तानोत्पत्ति के अयोग्य स्त्री को भी रखता है और दूसरी पत्नी को भी। कई व्यक्ति ऐसे भी हैं जो यह जानकर भी कि यह स्त्री सन्तानोत्पत्ति के अयोग्य है, दूसरी स्त्री से शादी करना अव्यावहारिक समझते हैं। सचमुच निराली है उत्तरकाशी की आधी दुनिया। □

लेख

भगवान बुद्ध का जीवन दर्शन

▢ डॉ० वैद्यनाथ लाभ

"भग्गरागो भग्गदोसो भग्गमोहो अनासवो।
भग्गरस पापका धम्मा, भगवा तेन पवुच्चति ॥"

अर्थात् जिसने राग, द्वेष व मोह को भग्न कर दिया है; जो काम, भव, मिथ्यादृष्टि तथा अविद्या रूपी आस्रवों को नष्ट कर अनास्रव हो चुका है; एवं जिसने सभी पापधर्मों को निर्मूल कर दिया है, वही भगवान् है।

बुद्ध अपने चरित्र एवं व्यक्तित्व के इन्हीं वैशिष्ट्यों के बल पर भगवान् कहे जाते हैं। छठी शताब्दी ई० पू० के आध्यात्मिक पुनर्जागरण काल में उन्होंने अपने द्वारा अन्वेषित ज्ञान व दर्शन की जो ज्योति संसार में प्रज्ज्वलित की वह अद्यावधि अज्ञानान्धकार में भटकती जाति के समक्ष एक श्रेष्ठ व हितैषी मार्गदर्शक का दृष्टान्त प्रस्तुत करती है।

भगवान् बुद्ध की जन्मतिथि के बारे में इतिहासकारों में मतैक्य नहीं है, तथापि 563 ई० पू० को अधिकांश विद्वान् अनुमोदित करते हैं। उनके जीवन की तीन महत्वपूर्ण घटनाओं - जन्म, बोधि-प्राप्ति तथा परिनिर्वाण की तिथियां, स्थविरवाद परम्परा में एक दिन ही मानी जाती हैं और वह है वैशाख मास की पूर्णिमा। अस्तु, उनका जन्म उक्त तिथि को नेपाल की तराई में स्थित लुम्बिनी नामक स्थान पर एक शालवन में हुआ था। उनके पिता शुद्धोदन शाक्यगण के निर्वाचित राजा थे तथा कपिलवस्तु में उनकी राजधानी थी। उन्हें जन्म देने के बाद एक सप्ताह पश्चात् ही उनकी माता महामाया देवी परलोक सिधार गईं तथा उनके पालन-पोषण का भार उनकी मौसी एवं विमाता महा प्रजापति

गौतमी पर पड़ा जिन्होंने अपने दायित्व का वहन पूर्ण निष्ठा से किया। बुद्ध का बाल्यकालीन नाम सिद्धार्थ था तथा गौतम गोत्र के होने से वे गौतम नाम से भी अभिहित हुए।

सिद्धार्थ के जन्म के कुछ ही दिनों बाद असित नामक एक वृद्ध ऋषि कपिलवस्तु पधारे तथा शिशु को देखकर उन्होंने भविष्यवाणी की कि यह शिशु अनागत काल मे यदि गृहस्थाश्रम में रहा तो चक्रवर्ती सम्राट बनेगा, नहीं तो फिर गृहत्याग कर महान् संन्यासी होगा तथा विश्व को अपने जीवन-दर्शन से एक नूतन मार्ग दिखलाएगा। शुद्धोदन को इस भविष्यवाणी से काफी चिन्ता हुई कि कहीं उनका प्रिय इकलौता पुत्र संन्यासी न हो जाए और ऐसा सोचते हुए उन्होंने सिद्धार्थ का चित्त सांसरिक सुखों में लिप्त करने के उद्देश्य से समस्त भौतिक सुख-सुविधाएं उनके लिए उपलब्ध कर दीं। वर्ष की तीन मुख्य ऋतुओं—ग्रीष्म, वर्षा तथा शीत के अनुकूल तीन प्रासाद बनवा दिए गए। सिद्धार्थ को क्षत्रिय राजकुमारोचित शस्त्र व शास्त्र दोनों ही विद्याओं में प्रशिक्षित किया गया तथा उन्होंने इनमें शीघ्र ही नैपुण्य भी प्राप्त कर लिया। युवावस्था में यशोधरा या गोपा नामक एक क्षत्रिय राजकन्या से उनका विवाह हुआ, जिससे बाद में चलकर उन्हें राहुल नामक एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ, किन्तु ये सांसारिक सुख-आकर्षण उन्हें अपनी ओर खींच नहीं सके।

सिद्धार्थ इन सांसारिक सुखों से निर्लिप्त रहकर बहुधा एकान्त में किसी चिन्तन में निमग्न रहते। ये समस्त ऐश्वर्य उन्हें व्यर्थ व तुच्छ प्रतीत होते तथा ऐसा लगता कि वे मात्र दु:खों के उत्पादक हैं। इसी क्रम में एक बार वे रथ पर नगर-भ्रमण हेतु निकले। मार्ग में उन्हें एक वृद्ध, एक रुग्ण, एक मृत व उसकी शवयात्रा तथा अन्त में सांसरिक जीवन से मुक्त एक प्रसन्नचित्त व चिन्तामुक्त संन्यासी दिखे। इन दृश्यों ने गम्भीर स्वभाव वाले सिद्धार्थ के चित्त में जीवन की इस निस्सारता एवं दु:ख के भावों को और भी घनीभूत कर दिया और उनतीस वर्ष की अवस्था में एक दिन वे रात्रिकाल में अपनी प्रिय पत्नी व पुत्र को सुप्तावस्था में छोड़कर गृहजीवन त्याग कर इन दुखों के कारण उनसे मुक्ति के मार्ग की खोज में निकल पड़े। उनके जीवन की इस घटना को 'महाभिनिष्क्रमण' कहते हैं।

सत्य व ज्ञान के अन्वेषण के क्रम में सिद्धार्थ ने आलार कालाम तथा उद्रक रामपुत्र प्रभृति आचार्यों का शिष्यत्व ग्रहण किया, किन्तु उनकी ज्ञानपिपासा शान्त नहीं हुई और वे यत्र-तत्र भटकते रहे। फिर गया के निकटस्थ उरुवेला के वनखण्ड में निरञ्जना (वर्तमान फल्गु) नदी के तट पर एक पीपल वृक्ष के नीचे पांच संन्यासियों के साथ उन्होंने कठिन तपश्चर्या आरम्भ की।

एक दिन वीणा बजाती हुई स्त्रियों का एक समूह उधर से गुजरा। बजते संगीत का आशय यह था कि वीणा के तारों को इतना शिथिल मत छोड़ो कि उनमें से स्वर ही नहीं निकले तथा इतना कसो भी मत कि वे टूट ही जाएं। ऐसा माना जाता है कि सिद्धार्थ के मन पर इस संगीत का गम्भीर प्रभाव पड़ा एवं उन्होंने कठिन व उग्र तपश्चर्या की व्यर्थता को समझ लिया। इस संगीत ने बुद्ध के मध्यममार्ग के सिद्धान्त के प्रतिपादन में विशिष्ट

भूमिका निभायी। अस्तु, एक दिन पीपल देवता को पुत्र-प्राप्ति के उपलक्ष्य में खीर चढ़ाने आई सुजाता नाम की स्त्री की खीर भी सिद्धार्थ ने ग्रहण कर ली तथा पुनः ध्यानमग्न हो गए। उन्हें अन्नग्रहण करते देखकर पांचों संन्यासी उन्हें तपोभ्रष्ट समझकर उनका साथ छोड़कर सारनाथ चले गए।

इधर सिद्धार्थ ने अपनी तपश्चर्या निरन्तर जारी रखी। पैंतीस वर्ष की आयु में उन्हें ज्ञान या बोधि का अभिज्ञान हुआ तथा वे 'बुद्ध' के नाम से ख्यात हुए। जिस स्थान पर उन्हें बोधि प्राप्त हुई उसका नाम बोधगया पड़ा, जिस वृक्ष के नीचे उन्हें बोधि मिली उसे 'बोधिवृक्ष' तथा जिस आसन पर वे बैठे थे उसे 'वज्रासन' कहा गया।

भगवान बुद्ध ने अपने ज्ञान से सर्वप्रथम उन पांच भिक्षुओं को उपदिष्ट व लाभान्वित किया जो उन्हें तपोभ्रष्ट समझ कर सारनाथ चले गए थे तथा वहां ऋषिपतनमृगदाय नामक उपवन में तपस्या कर रहे थे। बुद्ध ने अपने प्रथम धर्मोपदेश में जिसे 'प्रथम धर्मचक्रप्रवर्तन' के नाम से जाना जाता है, उन पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को चार आर्य सत्यों तथा आष्टाङ्गिक मार्ग का उपदेश दिया।[1]

भगवान बुद्ध की दृष्टि में जीवन की सबसे बड़ी समस्या 'दुःख' थी, अतः उन्होंने इसके समाधान पर अत्यधिक बल दिया। चार आर्य सत्तों में उन्होंने दुःख, दुःख की उत्पत्ति के कारण, उसकी समाप्ति अर्थात् दुःखमुक्ति की अवस्था निर्वाण एवं उस अवस्था की प्राप्ति के मार्ग अर्थात् आष्टाङ्गिक मार्ग का प्रज्ञापन किया। 'दुःख क्या है' इस पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि जन्म दुःख है, बुढ़ापा दुःख है, व्याधि दुःख है, मृत्यु दुःख है, अप्रिय वस्तु या व्यक्ति से वियोग दुःख है, इच्छित वस्तु की अप्राप्ति दुःख है और संक्षेप में कहा जाए तो जीवन के पञ्चउपादान स्कन्ध (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार व विज्ञान) ही दुःख है। दुःख की उत्पत्ति के कारण की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा कि त्रिविध तृष्णा (कामतृष्णा, भवतृष्णा व विभवतृष्णा) ही इन दुःखों का मूल है। उन्होंने स्पष्ट कहा कि दुःख अकारण नहीं होता और न ही किसी अदृश्य शक्ति द्वारा ऊपर से थोप दिया जाता है, बल्कि यह किसी न किसी कारणवश उत्पन्न होता है और तृष्णा या इच्छा ही वह कारण है। पुनः, यतः दुःख कारण-उद्भूत है, अतः कारण या कारणों के विनाश से दुःख का विनाश भी सम्भव है। दुःख के सर्वथा विनाश की अवस्था का नाम ही निर्वाण है और यही तृतीय आर्य सत्य है। यदि दुःख का सर्वथा निरोध सम्भव है तो फिर उसके लिए कोई न कोई उपाय या मार्ग भी अवश्य होना चाहिए। भगवान बुद्ध का चतुर्थ आर्य सत्य इसी मार्ग का प्रज्ञापन करता है जिसे पारिभाषिक रूप में 'दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा' कहा जाता है। उन्होंने चारित्रिक परिष्करण के लिए तपस्या के नाम पर अत्यधिक शारीरिक कष्ट तथा दूसरी ओर सांसारिक सुखों में अत्यधिक अनुरक्ति—दोनों को ही निरर्थक एवं मूर्खतापूर्ण बताया एवं दोनों के मध्य का मार्ग उपदिष्ट किया। इस तरह इसका मध्यममार्ग नाम भी सर्वथा उचित ही है। इस मार्ग के आठ चरण या अङ्ग होने से इसका एक और नाम आष्टाङ्गिक मार्ग भी है। ये आठ

अङ्ग हैं—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि। इन आठ अङ्गों को शील, समाधि तथा प्रज्ञा के तीन पदों में भी संक्षिप्त किया जाता है। इनमें शील के अनुपालन से शारीरिक व वाचसिक दुष्कर्मों पर नियन्त्रण होता है तथा एतद्रूप में चरित्र का परिष्करण होता है। यत: व्यक्ति संसार की विभिन्न वस्तुओं की प्राप्ति की लिप्सा या तृष्णा से ग्रसित है, अत: उनकी अप्राप्ति दु:खों के उत्पाद का कारण बनती है। इस कारण मन या चित्त की परिशुद्धि भी अपेक्षित है। भगवान् बुद्ध ने स्पष्ट रूप से कहा है कि 'जिसके सहस्र प्रिय हों, उसके दु ख भी सहस्र होते हैं, जिसके सौ प्रिय हों, उसके दु:ख भी सौ होते हैं ; जिसके दस प्रिय हों, उसके दु:ख भी दस होते हैं ; जिसका एक प्रिय हो, उसका दु:ख भी एक होता है और जिसका कोई प्रिय नहीं उसे कोई दु:ख भी नहीं होता।' समाधि की भावना से मानसिक लिप्सा या तृष्णा का नाश होता है तथा चित्त परिशुद्ध व एकाग्र होता है। इस प्रकार शील के अनुपालन एवं समाधि की भावना करने से व्यक्ति के शारीरिक, वाचसिक तथा मानसिक दुष्कर्मों का परिष्कार होता है और तदनन्तर व्यक्ति प्रज्ञा की ओर उन्मुख होता है। प्रज्ञा का अर्थ है ज्ञान। विपश्यना इसका अधिवाचक है। इसकी प्राप्ति से व्यक्ति यह भली भांति जान लेता है कि उसका जन्म चार महाभूतों (पृथ्वी, अग्नि, जल तथा वायु) से निर्मित है, माता-पिता के संयोग से सम्भव है, भोजनादि पर आधारित है तथा उसके जीवन में किसी भी अदृश्य, अलौकिक पारमार्थिक सत्ता की कोई भूमिका नहीं है।

अपने अस्तित्व की वास्तविकता को समझ लेने के पश्चात् व्यक्ति त्रिविधलक्षमयुक्त संसार को ठीक-ठीक समझ लेता है कि सब कुछ अनित्य सतत् परिवर्तनशील है, सब कुछ मूलत: दु:खप्रद है तथा शाश्वत व नित्य आत्मा नाम की कोई भी सत्ता विद्यमान नहीं है— "परमत्थतो, पनेत्थ, पुग्गलो न उपलब्भती' ति।"[2] ऐसा ज्ञान हो जाने पर व्यक्ति के चित्त में पूर्व से ही विद्यमान लोभ, द्वेष, मोह जैसी अकुशल प्रवृत्तियों का समूल नाश हो जाता है और वह समस्त दु:खों व क्लेशों से मुक्त, अत्यन्त परिशुद्ध, सर्वथा दोषरहित शाश्वत सुख की अवस्था निर्वाण की प्राप्ति करता है—

"सब्बे सङ्खरा अनिच्चा'ति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥
सब्बे सङ्खरा दुक्खा'ति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥
सब्बे धम्मा अनत्ता'ति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥

त्रिलक्षण सिद्धान्त के संदर्भ में 'अनित्य' की व्याख्या करते हुए भगवान् बुद्ध ने नदी के दृष्टान्त से कहा कि एक नदी का जल निरन्तर प्रवहमान रहता है और ऐसा प्रतीत होता है कि यह वही नदी है जो किञ्चित्काल पूर्व थी, किन्तु वास्तविकता भिन्न होती है। हर क्षण जलप्रवाह के साथ बहुत-सारी मिट्टी, पत्ते इत्यादि आगे बह जाते हैं तथा उनके स्थान पर

कुछ और आ जाते हैं किन्तु सामान्यतया यही भ्रम होता है कि यह वही नदी है जो पूर्व-क्षण में थी। इसी प्रकार वस्तुएं सतत् अविराम, अबाध रूप से सूक्ष्म या स्थूल रूप में परिवर्तित होती रहती हैं। किन्तु सामान्यतया लोग इसे समझ नहीं पाते और भूलवश कह देते हैं कि यह वही पहले वाली वस्तु है। इस प्रकार की मिथ्या धारणाओं के कारण ही विभिन्न वस्तुओं और व्यक्तियों के प्रति ममत्व उत्पन्न होता है और व्यक्ति उन्हें अपनी सम्पत्ति समझकर अपने पास रखने का यत्न करता है। किन्तु वस्तु स्थिति यह होती है कि वह वस्तु अपनी क्षणभंगुरता के गुण के कारण उस व्यक्ति से क्षण-क्षण दूर होती जाती है। अनित्यता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए बुद्ध कहते हैं--'यं किञ्चि समुदयधम्मं सब्बं तं निरोधधम्मं', अर्थात् जो कुछ भी उत्पन्न होने वाला है वह बिना किसी अपवाद के विनाशधर्मा है। त्रिलक्षण सिद्धान्त के सन्दर्भ में ही 'दु:ख' की व्याख्या करते हुए भगवान् बुद्ध ने स्पष्ट किया कि 'दु:ख' और कुछ नहीं बल्कि मन की एक अवस्था विशेष है और वह है—प्रतिकूल वेदना—'परिकूलवेदना 'ति दुक्खं', अथवा 'अमनापा वेदना 'ति दुक्खं' या फिर दूसरे शब्दों में जिसका वहन दुष्करता से किया जाए वही दु:ख है—'दुक्करेन खमति इति दुक्खं।' वस्तु व्यक्ति, स्थान आदि से संयोग-वियोग तो होते ही रहते हैं, किन्तु सुख या दु:ख की बात वहीं होती है जहां मन किसी-न-किसी प्रकार लगाव, ममता या तृष्णा का अनुभव करता है। भगवान् बुद्ध वस्तु के अनित्य लक्षण के आधार पर स्पष्ट करते हैं कि विनाशधर्मा वस्तु या विषय के मूल में दु:ख की ही स्थिति होती है।

बौद्ध दर्शन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त है—अनात्मवाद का। इसका प्रतिपादन करते हुए बुद्ध स्पष्ट कहते हैं कि जब सब कुछ अनित्य अर्थात् परिवर्तनशील तथा मूलत: दु:खप्रद ही है, तो फिर शाश्वत आत्मा का स्थान ही कहां रह जाता है? वस्तुत: भगवान् बुद्ध के काल में मुख्यत: दो प्रकार की दर्शन-परम्पराएं विद्यमान थीं—शाश्वतवाद तथा उच्छेदवाद। शाश्वतवाद जो कि औपनिषदीय परम्परा पर आधारित था, यह विश्वास रखता था कि इस सृष्टि का सर्जक कोई शाश्वत परमात्मा है जिसने अपने अंश समस्त प्राणि में स्थापित कर दिए हैं। संक्षेप में सामान्यतया हिन्दू धर्म-दर्शन में जिस शाश्वत आत्मा की अवधारणा उपलब्ध होती है, उसी का पोषक था बुद्धकालीन शाश्वतवाद। उस समय की दूसरी मुख्य दर्शन-परम्परा थी उच्छेदवाद की। उच्छेदवाद जिसे सामान्यतया चार्वाकीय दर्शन भी कहते हैं यह मानता है कि इस शरीर में किसी प्रकार की भी शाश्वत सत्ता विद्यमान नहीं है और शरीरान्त होने पर यह (शरीर) पूर्णतया समाप्त हो जाता है, नष्ट हो जाता है। अत: 'जब तक जीयो, सुख से जीयो' वाले कथन में उच्छेदवाद के समर्थक विश्वास रखते थे 'यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पीवेत्।' भगवान् बुद्ध ने इन दोनों के मध्य का मार्ग अपनाया। शाश्वतवादियों की आलोचना करते हुए उन्होंने कहा कि यदि आत्मा को शाश्वत माना जाए तो इससे यह संकट उत्पन्न हो जाता है कि इसे न तो शुद्ध किया जा सकता है और न ही अशुद्ध। यदि यह शुद्ध है तो सदैव शुद्ध ही रहेगा और यदि अशुद्ध है तो सदैव अशुद्ध ही रहेगा। इस प्रकार की धारणा अकर्मण्यता को जन्म देगी। आत्मवादियों पर बौद्ध दर्शन आक्षेप करते हुए कहता है कि ये लोग एक ऐसी अप्रतिम सुन्दर

नायिका से प्रेम करते हैं जिसे इन्होंने कभी देखा ही नहीं हो, या फिर आकाश में स्थित किसी काल्पनिक भवन में सीढ़ी के सहारे चढ़ना चाहते हों या फिर एक अत्यन्त अन्धकारपूर्ण प्रकोष्ठ में एक कृष्णवर्ण बिल्ली को पकड़ना चाहते हों जो कि वस्तुतः वहां हो ही नहीं। दूसरी ओर उच्छेदवादियों की आलोचना इस आधार पर की गई कि इससे जीवन में नैतिकता-अनैतिकता का भेद ही नहीं रह जाएगा। इसके अतिरिक्त जन्म-मरण-पुनर्जन्म की परम्परा मानते हुए बुद्ध ने उच्छेदवादियों को संकुचित व असन्तुलित दृष्टिकोण का वाहक बताया। इन दोनों के मध्य का मार्ग अपनाते हुए उन्होंने नाम-रूप के अविच्छिन्न प्रवाह को माना जो सतत परिवर्तित होते हुए भी प्रवहमान रहता है। यह न तो पूर्णतया पूर्वक्षणों वाला ही है और ही पूर्णतया भिन्न– 'न च सो न च अञ्ञो।' अस्तु, अनात्मवाद के सिद्धान्त को प्रतिपादित करते हुए बौद्ध दर्शन इस शरीर के निर्माण व अस्तित्व के लिए नाम-रूप (जिसे पञ्चस्कन्ध के रूप में रूप, वेदना, संज्ञा, सस्कार तथा विज्ञान भी कहते हैं) को ही उत्तरदायी मानता है तथा रथ की उपमा देते हुए स्पष्ट करता है –

'यथा हि अङ्गसम्भारा, होति सद्दो रथो इति।
एवं खन्धेसु सन्तेसु, होति सत्तो 'ति सम्मुति इति।।'

बुद्ध ने कार्य-कारण सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धान्त प्रदीप्त किया। उन्होंने कहा कि कारण के आधार पर कार्य होता है. कारण के न रहने पर कार्य नहीं होता तथा कारण को यदि समाप्त कर दिया जाए तो कार्य भी समाप्त हो जाता है 'इमस्मिं सति इदं होति, इमस्मिं असति इदं न होति, इमस्स उप्पादा इदं उप्पज्जति, इमस्स निरोधा इदं निरुज्झति।' प्रतीत्यसमुत्पाद जैसे गम्भीर सिद्धान्त के सहारे भवचक्र की व्याख्या भी की गई है। इस सिद्धान्त में बारह निदान अर्थात् अङ्ग हैं – अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नाम-रूप, छः आयतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव जाति एवं जरा-मरण। इनमें अविद्या के होने से संस्कार, संस्कार के होने से विज्ञान, विज्ञान के होने से नाम-रूप इत्यादि होते हैं। फिर यदि अविद्या न हो तो संस्कार नहीं होगा, संस्कार नहीं हो तो विज्ञान नहीं. विज्ञान नहीं हो तो नाम-रूप नहीं होगा इत्यादि। प्रतीत्यसमुत्पाद के माध्यम से भगवान् बुद्ध ने कर्मवाद का दर्शन दिया, जिसका तात्पर्य यह है कि कर्म की कुशल-अकुशल प्रकृति के अनुरूप ही उसके परिणाम भी होते हैं।

इस संदर्भ में यह भी कहना असंगत न होगा कि बौद्ध दर्शन में वर्ण व्यवस्था के जन्मगत आधार को सदैव अनुचित व भ्रामक माना गया। बुद्ध ने बड़े ही जोरदार ढंग से कहा—

'न जच्चा वसलो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणो।
कम्मुना वसलो होति, कम्मुना होति ब्राह्मणो।।

अर्थात् कोई व्यक्ति जन्म से शूद्र या ब्राह्मण न होकर कर्म से ही शूद्र या ब्राह्मण होता है।

व्यक्तिगत जीवन में शान्ति एवं परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्व में सुव्यवस्था की

स्थापना के उद्देश्य से भगवान् बुद्ध ने ब्रह्मविहार का उपदेश दिया, जिसके चार चरण हैं— मैत्री, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा। मैत्री की भावना (अभ्यास) करने वाला शत्रु और मित्र का भेद न कर प्राणिमात्र से मित्रवत् व्यवहार करता है तथा सबकी मङ्गलकामना करता है—

'ये केचि पाणभूतत्थि, तसा वा थावरा अनवसेसा।
दीघा वा बे महन्ता वा, मज्झिमा रस्सकानुकथूला॥
दिट्ठा वा येव अदिट्ठा, ये च दूरे वसन्ति अविदूरे।
भूता वा सम्भवेसी वा, सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता॥'

इसी प्रकार, दु:खी जनों के दु:ख में सहभागी होकर उनके दु:ख को न्यून करने का प्रयास ही करुणा है तथा अपने इसी सद्गुण के कारण बुद्ध महाकारुणिक कहे गए। मुदिता का अर्थ है दूसरे की उन्नति व ऐश्वर्य देखकर प्रसन्नता का अनुभव करना। पुन: उपेक्षा का अर्थ है— सुख-दु:ख, मान-अपमान, उत्कर्ष-अपकर्ष आदि हर अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति में समभाव रखना। इन चारों के अनुपालन से जीवन में निश्चय ही शान्ति व सुव्यवस्था आ सकती है।

बोधि-प्राप्ति के अनन्तर पैंतालीस वर्षों तक बुद्ध भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न ग्रामों, जनपदों, प्रदेशों इत्यादि में चारिका करते हुए अपने जीवन में अनुभूत धर्म-दर्शन का जनमध्य प्रसार करते रहे तथा अस्सी वर्ष की अवस्था में कुशीनगर में उनका परिनिर्वाण हुआ।

वस्तुत: यदि देखा जाय तो भगवान् बुद्ध ने अपने जीवन में जिन समस्याओं व प्रश्नों को समझा तथा जिनके समाधान ढूंढ़े उन्हें प्राणिमात्र के कल्याणार्थ वे अपनी करुणामयी वाणी द्वारा जीवनपर्यन्त जनमध्य वितरण करते रहे। उनके दर्शन एवं दार्शनिक सिद्धान्त उनके जीवन के अनुभूत सत्य थे, अत: इस रूप में यदि देखा जाय तो उनका जीवन ही उनका दर्शन था एवं उनका दर्शन ही उनका जीवन था। उनके समक्ष 'बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय' का उद्देश्य था, अत: उन्होंने प्राणिमात्र के कष्टों को दूर करने के लिए अपने दार्शनिक सिद्धान्तों के उपदेश दिए। उनके द्वारा उपदिष्ट सत्य, अहिंसा, मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा, कर्मवाद, अनित्य, दु:ख, अनात्म आदि के सिद्धान्तों की उपादेयता जितनी बुद्धकाल में थी उतनी ही आज भी है और अनागतकाल में भी निस्सन्देह रहेगी। ▢

संदर्भ

1. महावग्ग, स०-प्रो० महेश तिवारी, पृ० 13
2. मिलिन्दपञ्हो, स०-स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, पृ० 21
3. धम्मपद, स०-भिक्षु धर्मरक्षित, पृ० 88
4. महावग्ग, पृ० 15
5. मिलिन्दपञ्हो, पृ० 31
6. तथैव, पृ० 21
7. सुत्तनिपात, स०-भिक्षु धर्मरक्षित, पृ० 34
8. तथैव, पृ० 36

कलावीथि

पहाड़ी रूमाल तथा चोलियां

□ श्रीमति वीणा

पहाड़ी कलात्मक रूमाल एवं चोलियां अपनी कढ़ाई के कारण विश्व प्रसिद्ध हैं। नाड़ के कलात्मक कार्य की तरह पहाड़ी रूमाल भी अपना सानी नहीं रखते। अक्सर पहाड़ी रूमालों को सिर पर बांधने के लिए महिलायें इस्तेमाल करती हैं। कार्यक्षेत्र में बालों को व्यवस्थित करना और ज्यादा शारीरिक मेहनत से होने वाली थकान को रोकने में इन रूमालों का मुख्य उपयोग होता था। कालान्तर से सज्जा एवं कलात्मक रूप निखरने लगे और सुन्दर से सुन्दरतम कढ़ाई किए हुए रूमालों का प्रचलन शुरू हुआ। इन पहाड़ी रूमालों में बसोहली एवं चम्बा के रूमाल जगत प्रसिद्ध हुए और इन्हें अनेक कलादीर्घाओं में प्रदर्शित किया जाने लगा। उधमपुर, बसोहली, कांगड़ा और चम्बा के पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाली महिलायें आज भी इन रूमालों का उपयोग सिर ढकने के लिए करती हैं। ये रूमाल अति सादे होते हैं—कपड़े का चौकोर टुकड़ा। पर ये चौकोर टुकड़े धीरे धीरे फैंसी होने लगे। तीज त्योहारों एवं पर्वों, उत्सवों पर बहुरंगी रूमालों का प्रचलन शुरू हुआ। ब्याह शादियों एवं दूसरे अनुष्ठानों पर कढ़ाई किए हुए रूमाल उपयोग में लाए जाने लगे।

अक्सर कहा जाता है कि इन रूमालों का उद्गम स्थान चम्बा था। वस्तुत: पहाड़ी कलम की तरह इन रूमालों की परम्परा बसोहली से ही शुरू हुई। जहां से यह पहाड़ी कलम की ही तरह अनेक पहाड़ी रियासतों में फैली—बसोहली, भड्डू, मनकोट, बिलावर, जम्मू, चम्बा, कांगड़ा, बिलासपुर कुल्लु, मण्डी आदि। किन्तु आज यह परम्परा चम्बा, बनी एवं उधमपुर के पहाड़ी क्षेत्रों को छोड़कर धीरे धीरे लुप्त होती जा रही है। पुराने कलात्मक रूमालों में से अनेक विश्व की कला दीर्घाओं में उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। एक चम्बा (साऊथ

कंसिघटन) कलादीर्घा में प्रदर्शित है। ऐसा कहा जा सकता है कि यह रूमाल बसोहली से लगभग 1782 ई० में चम्बा के राजा राज सिंह द्वारा बसोहली से लूटे गए दूसरे सामान के साथ चम्बा लाया गया था इसी प्रकार एक और सुन्दर कलात्मक रूमाल बड़ौदा की कलादीर्घा में अपना स्थान पाये हुए है। ये पहाड़ी रूमाल विभिन्न नापों के हल्के रंगीन टुकड़ों पर कढ़ाई करके बनाए गए हैं।

पहाड़ी रूमाल की कढ़ाई में अनेक विषय चुने जाते रहे हैं। फूल-पत्ती बेल-बूटे ज्यामितीय आकार, विभिन्न डिज़ाइनों के साथ-साथ रासलीला, कृष्ण लीला, भगवत पुराण की कथायें, प्रचलित लोक कथायें एवं रोमांस के क्षणों को भी रंगीन धागों के माध्यम से इन रूमालों में बुना जाता रहा है। इनके अलावा रोजमर्रा की वस्तुओं की कढ़ाई एवं डिजाइन भी इन रूमालों पर बनाये जाते हैं।

भे रूमाल मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं। एक वे जो सिर पर बान्धने के लिए उपयोग किए जाते हैं और दूसरे वे जो भेंट स्वरूप दिए जाते हैं। पहली तरह के रूमाल सादे, कम कढ़ाई वाले और हल्के रंगों के होते हैं। हां अनुष्ठानों और पर्वों पर पहने जाने वाले रूमाल सुन्दर चमकीले रंगों से सजे होते हैं।

दूसरी प्रकार के रूमाल रेशमी तथा सुनहरी रंगीन धागों से कढ़े होते हैं। इन रूमालों का कपड़ा रेशमी अथवा मुलायम सूती होता है। रेशमी कपड़ों को निर्धारित टुकड़ों में काट लिया जाता है। इन्हें दोनों ओर से काढ़ा जाता है। ताकि इनका प्रयोग दोनों ओर से किया जा सके और बार्डर रेखायें कोनों पर बनाने से रूमाल की सज्जा खूब हो जाती है। आकारों और हाशिए को काढ़ने के लिए अलग-अलग प्रकार के रंगीन धागों का प्रयोग किया जाता है। अक्सर सूती और रेशमी धागों का प्रयोग अधिकतर रहता था जिन्हें घर पर ही रंगा जाता था। प्रमुख रंग बबूल के फूलों, दीपक के काजल, केसर तथा बसूटी नामक कीट से बनाए जाते थे। ये रंग पीले, काले, केसरिया तथा सुर्ख होते थे। इन्हें मिलाकर दूसरे रंग तैयार किए जाते थे, इन रूमालों को कलात्मक बनाकर भेंट के स्वरूप दिया जाता रहा है। आज भी ब्याह शादियों के अवसर पर सूखे मेवे के थाल को ढकने के लिए ये रूमाल कहीं कहीं पर पहाड़ों में भेंट दिए जाते हैं। बहुत अमीर परिबारों में तिल्ले के धागों से भी इन रूमालों को काढ़ा जाता रहा है। ऐसे दो सजावटी रूमाल जम्मू की डोगरा आर्ट गैलरी में दर्शक दीर्घाओं में प्रदर्शित हैं पहला रूमाल हल्के लाल रंग के रेशमी कपड़े का है। जो चौकोर नाप में 9 इंच चौड़ाई और 9 इंच लम्बाई लिए है। सारे रूमाल को धागों के माध्यम से चार-चौकोरों में बांटा गया है। हरेक चौकोर को फिर धागे से चार चौकोर में बांटा गया है। इस प्रकार कुल सोलह चौकोर बनते हैं हरेक चौकोर में एक ज्यामितीय फूल काढ़ा गया है। जो सुनहरी तिल्ले की आभा बनाए है। सुनहरी धागे के साथ-साथ नीले तथा हरे रंगों का भी प्रयोग किया गया है। इसके हाशिये को भी बहुत सुन्दर ढंग से काढ़ा गया है।

दूसरा रूमाल हल्के पीले रंग के रेशमी कपड़े का है। इसका नाप काफी बड़ा है 3 फुट × 3 फुट। इसके हाशिए पर सरकती बेलें और पत्तियां बनाई गई हैं, पत्तियां हरे रंग की और फूल सुर्ख पंखुड़ियां लिए हैं। दूसरा हाशिया पीले रंग की सादी रेखा सा है। तीसरा हाशिया जामुनी रंग का सादी रेखा के रूप में है। इस रूमाल के प्रत्येक कोने में ज्यामितीय आकार के एक चौथाई बड़े फूल काढ़े गए हैं। जिन्हें अनेक रंगीन धागों से सजाया गया है। लाल पंखुड़ियां पीले और हरे शेड लिए हुए हैं। हरेक फूल के केन्द्र में गोलाकार बिन्दु बनाए गए हैं। हरेक कोने में दो तोतों का जोड़ा एक दूसरे की ओर मुंह किए काढ़ा गया है। ये तोते हरे रंग के हैं पर इनकी चोंच और पंख सुर्ख रंग के धागों से बनाए गए हैं। रूमाल के केन्द्र में आठ पंखुड़ियों वाला एक बहुत बड़ा फूल काढ़ा गया है। ये पंखुड़ियां सुर्ख रंग लिए हैं और जामुनी रंग से इनको शोभायत किया गया है। हरेक सुर्ख पंखुड़ी हरी पंखुड़ी से अलग की गई है। रूमाल की चार दिशाओं में एक-एक मनका सिल दिया गया है। फूल का केन्द्र पीले और हरे वृत्तों से सजा है। फूल के घेरे पर रेशमी धागों से बेलबूटे काढ़े गए हैं जिन पर फूल पत्तियां सजी हैं।

पहाड़ी चोलियां :—पहाड़ी रूमालों की तरह ही चोलियां भी अपने कलात्मक सौन्दर्य के लिए नगर प्रसिद्ध रही हैं। इन्हें रेशमी कपड़ों से बनाया जाता था। फिर विभिन्न रंगीन धागों से इन्हें काढ़ा जाता था। अक्सर ये चोलियां पीछे से खाली होतीं और इन्हें डोरों से पीठ पर बांधा जाता था। आगे के हिस्से अति कलात्मक होते थे। उरोजों को ढकते कपनुमा हिस्सों को अनेक फूलों, ज्यामितीय आकारों और बेलबूटों से सजाया जाता था। कई बार अनेक प्रकार से मनके सितारे और गोलाकार छोटे-छोटे शीशों को भी टांका जाता था। तिल्ले, रेशमी धागों और अबरक के टुकड़ों से इनकी शोभा खूब बढ़ जाती। इन कलात्मक चोलियों का प्रचलन विशेष तौर पर राजघरानों और रजवाड़ों में खूब होता था। यद्यपि पीठ की ओर से खुली चोलियों का प्रचलन आम नहीं था तथापि नितान्त एकान्न के क्षणों में इनका उपयोग आकर्षण, शारीरिक सौन्दर्य तथा मांसलता को उभारने के लिए ही होता रहा होगा।

रूमालों की सजावट तो कुछ कठिन न थी पर चोलियों पर फुलकारी करना और अत्याधिक कशीदाकारी न केवल कठिन कार्य था अपितु बहुत समय लेता था। रेशमी कपड़ों से पहले इन्हें आकार देकर सिया जाता था। फिर उरोजों के लिए कप बनाए जाते थे और बाद में इन्हें सजाया जाता था। ऐसी कई चोलियां अपनी कशीदा-कारी के कारण प्रसिद्ध हुई। डोगरा आर्ट गैलरी की दीर्घाओं में अनेक ऐसी कशीदाकारी से सज्जित चोलियां प्रदर्शित हैं।

1. पहली चोली बिना पीठ के मुलायम रेशमी कपड़े की है। यह आधी बाजू की चोली है। इस चोली के अग्रिम भाग में दो बड़े फूलों को काढ़ा गया है। इन दोनों फूलों की पन्द्रह पंखुड़ियां हैं। इन फूलों पर तिल्ले से कशीदाकारी की गई है। दोनों फूल उरोजों

के कयों पर पूरी तरह से सज्जित हैं। इन दो फूलों के बीच एक-एक फूल आठ पंखुड़ियों सहित काढ़ा गया है। बड़े फूलों को भीतर से हरी और सुर्ख रेखाओं के हाशियों से सज्जित किया गया है। भीतर के फूलों की भीतरी रेखाओं को सुर्ख रंग के धागों से काढ़ा गया है। छोटे फूलों का केन्द्रीय बिन्दु हरी गोलाईयां है। जो उरोजों की उठान पर ठीक केन्द्र में स्थित हैं। कमर की ओर उक्त चोली पर सोलह पंखुड़ियों वाला एक बड़ा फूल काढ़ा गया है। इस अकेले फूल की भीतरी रेखाओं को हरी नीली और सुर्ख आभा से मुखरित किया गया है। इन हाशिया बनाती रेखाओं में एक छोटा फूल काढ़ा गया है। जिस की चार दिशाओं से चार कलियां प्रस्फुटित होती दिखाई गई हैं। इस फूल के दोनों ओर दो बेलनाकार काढ़े गए हैं। बायें वाला आकार तिल्ले में है और दायां सुर्ख रेशमी धागे से बनाया गया है। इस चोली को पीठ पर से बांधने के लिए तीन धागे दोनों ओर से बनाए गए हैं।

2. दूसरी चोली भी बिना पीठ की है। रेशमी कपड़े से बनी इस चोली के बाजू पर छ: वर्तुलाकार रेखाएं विभिन्न रंगों में काढ़ी गई हैं। इस चोली के स्तन भाग कोषाकार के हैं। और हरेक तीन चर्तुभुजों में बांटे गए हैं। इन चर्तुभुजों का फलक नीले रंग का है। हरेक चतुर्भुज में ज्यामितीय डिज़ाइन का फूल काढ़ा गया है। इन्हें विभिन्न रंगीन धागों के प्रयोग से बनाया गया है।

3. तीसरी चोली भी बिना पीठ के है। इसे भी पहली चोली की तरह सजाया गया है। यानि कि उरोजों की उठान पर एक-एक बड़ा फूल अनेक भीतरी रंगीन रेखाओं द्वारा काढ़ा गया है और केन्द्र में एक-एक छोटा फूल बनाया गया है। जो स्तन के बिन्दु का संकेत करता है। इसके बाजू सादा हैं। बिना किसी कशीदाकारी के चोली को बान्धने के लिए दो जोड़ी धागों का इस्तेमाल किया गया है। जो पीठ की ओर गले के पास एक जोड़ा सुर्ख धागे का है और दूसरा जोड़ा कमर के पास उरोजों के फूलों को रेखांकित करता हुआ पीछे चला जाता है। ये धागे मोटे एवं सूती हैं। जबकि ब्लाउज़ रेशमी कपड़े से बना है। इन चोलियों को देखकर सहज ही उत्तेजना के भाव जागृत होने लगते है। निश्चय ही यह सार्वजनिक पहनावा न होकर एकान्तिक, अन्तरंग क्षणों का पहनावा रहा है। ▢

विदेशी साहित्य

टिप्पणी एवं अनुवाद

अन्ना अख्यातोवा और उसकी कविताएं

□ सुधीर सक्सेना

सोवियत संघ के भीतर और बाहर हाल के बरसों में अत्यंत प्रशंसित और चर्चित कवयित्री अन्ना अख्यातोवा, हालांकि अलेक्सांद्र ब्लॉक और ब्लादिमीर मायकोव्स्की की समकालीन थीं, किन्तु उनकी कविताओं का मिजाज मायकोव्स्की और ब्लॉक से भिन्न है। वे रूस में प्रेम कविताओं की पर्याय हैं। उनकी कविताओं में प्रेम विविध रंग और विविध छटाओं के दर्शन होते हैं। प्रेम की कोमल, विकल, उत्तप्त तो कभी अवसाद भरी और कभी उदास भावनाओं की इन लिरिक-कविताओं की विशेषता है कि उनके केन्द्र में बतौर नायक कोई 'पुरुष' अतिमानव या दिव्य पुरुष नहीं है, वरन् उनके केन्द्र में एक 'स्त्री' है—प्रेम में पगी और डूबी हुई एक औरत, जिसके पास बिछोह की वेदना है और है हृदय की स्मृतियों का एक नारी-सुलभ संसार। अलेक्सांद्र त्वारदोविस्की के शब्दों में – 'अन्ना अख्यातोवा की कविताएं एक ऐसे व्यक्ति की लिरिकल-डायरी है, जिसने इस जटिल व जादुई युग में बहुत कुछ सोचा और महसूस किया। यह बात दीगर है कि वह समय इस डायरी में अपनी सारी खूबियों के साथ प्रतिबिंबित नहीं होता।'

अन्ना अख्यातोवा को इन दिनों ज्यादा याद करने की वजह यह भी है कि वर्ष 89-90 उनका शताब्दी वर्ष है। एक वर्ष की वय में ही वे जलसेना से सेवानिवृत्त अपने अधिकारी पिता के साथ उत्तर में त्सार्स्कोए सेलो चली आई थीं। अपने जीवन के सीलहवें साल तक वे यहीं रहीं। त्सार्स्कोए, जो रूसी जारों के ग्रीष्मकालीन आवास के लिये विख्यात था, का

उल्लेख उनकी कविताओं में बार-बार आया है। हालांकि, यह बड़ों की नकल का नतीजा था, किंतु अन्ना पांच साल की उम्र में ही फ्रेंच बोलने लगी थीं। ग्यारह साल की उम्र में ही उन्होंने पहली कविता लिख डाली थी। बहुतेरे आलोचक एवं कवि अख्यातोवा को पुश्किन की परंपरा से जोड़ते हैं, किंतु स्वयं अख्यातोवा लिखती हैं कि उनके लिये कविता पुश्किन या लेरमंतोव से शुरू न होकर देर्झाविन और नेक्रासोव से प्रारंभ होती है, जिनकी अनेक कविताएं उनकी मां को कंठस्थ थीं।

सन् 1911 में निकोलाई गुमिल्योव से विवाह के बाद उन्होंने अपना हनीमून पेरिस में मनाया। अगले साल इटली की यात्रा के दौरान जेनोजा, पीजा, फ्लोरेंस, वेनिस, पादुआ और वोलोना में इतालवी चित्रों और वास्तुकला ने उन्हें अभिभूत कर दिया। इसी साल उनका पहला कविता-संकलन 'वेचिर' (संध्या) आया। दिलचस्प बात यह है कि इस किताब की तीन सौ प्रतियां छपीं थीं। इसे हाथों हाथ लिया गया। मार्च, सन् 14 में उनकी दूसरी किताब 'च्योत्की' (रोजेरी) और सितंबर, सम् 17 में तीसरी किताब वेलया स्ताया (ए व्हाइट बर्डस फ्लाइट) प्रकाशित हुईं।

अख्यातोवा की लोकप्रियता का आभास इससे लगाया जा सकता है कि विगत चार दशकों में उनकी किताबों के बीस से ज्यादा संस्करण निकले हैं जिनकी दस लाख से ज्यादा प्रतियां बिक चुकी हैं। पहली किताब की तीन सौ प्रतियों के विपरीत बाद में ऐसा भी वक्त आया, जब उनकी पुस्तक की दो लाख तक प्रतियां छपीं।

अख्यातोवा की कविताओं में युद्ध की त्रासद-स्मृतियां हैं, कहीं घर लौटने को ललकता हुआ मन है, तो कहीं-कहीं अवसाद में गहरे डूबी हुई वीतरागी मुद्रा भी है। समय अख्यातोवा की कविताओं में अपनी छाप तो छोड़ता है, लेकिन वे अपने समय को उसकी जटिलताओं और विभीषिकाओं के साथ वैसे नहीं उकेरतीं जैसा कि मायकोव्स्की, पास्तरनाक अथवा येगोर इसायेव करते हैं। शिल्प और विन्यास के स्तर पर भी वे न तो नये प्रयोग करती हैं, और न ही जोखिम उठाती हैं। सीधी सच्ची सरल भाषा में वे स्वयं को बगैर किसी बनताऊपन के व्यक्त करती हैं और यही उनकी ताकत है, जो उन्हें लाखों पाठकों, विशेषतः महिलाओं में लोकप्रिय बनाती है।

1. कविता अलेक्सान्द्र ब्लॉक के लिये
   अन्ना अख्यातोवा की यह कविता प्रख्यात कवि अलेक्सान्द्र ब्लॉक को संबोधित है। अन्ना ने यह कविता ब्लाक (सन् 1880—1921) की उसे संबोधित कविता है सौंदर्य भयावह……तुम्हें बतायेंगे वे' के उत्तर में लिखी थी। इस कविता में कवयित्री ने ब्लॉक के अफित्सेर्स्कीया स्ट्रीट स्थित मकान में उससे अपनी इकलौती मुलाकात का जिक्र किया है। अब दिकाब्रिस्तोव स्ट्रीट में सत्तावन नंबर का यह मकान म्यूजियम में बदल चुका है। अन्ना ने ब्लॉक से अपनी मुलाकातों का वर्णन अपनी मृत्यु से एक साल पहले लिखी किताब में विस्तार से किया है, ताकि उसके और ब्लॉक के प्रणय-

प्रसंग को लेकर फैले भ्रमों का निवारण हो सके। अख्यातोवा के अनुसार ब्लॉक का एक पूरी पीढ़ी पर ज़बर्दस्त प्रभाव था लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि वह उसकी निजी ज़िंदगी का हिस्सा था।

अपने समय की अनिंद्य रूपसी इस कवयित्री ने ब्लॉक के लिये सात कविताएं लिखी हैं। उसका कहना कि ब्लॉक बीसवीं सदी के पहले पच्चीस वर्षों का महानतम योरोपीय कवि था। यद्यपि किसी कवि की विकास-यात्रा अनेक काव्य प्रवृत्तिओं से प्रभावित-परिचालित होती है, ब्लॉक का प्रभाव अख्यातोवा की कविताओं पर सहज ही परिलक्षित होता है। जहां तक ब्लॉक का प्रश्न था, अख्यातोवा की कविताओं की सहजता, संजीदगी और कोमलता के प्रति ब्लॉक के मन में यकीनन गहरी प्रशंसा का भाव था।

कवि अलेक्सान्द्र ब्लॉक के लिये अन्ना अख्यातोवा की कविता इस प्रकार है :

मैं जब पहुंची कवि घर
अतिथि बन, दुपहरी में / दिवस रविवार /
बड़े से कमरे में सन्नाटा / थी
खिड़कियों के बाहर धुंध

सूर्य —··· गो क़िरमिज़ी गेंद
बेतरतीब फाड़ते से धुएं के पार।
मेज़बान खड़ा था मेरे सम्मुख शांत
निर्मल दृष्टि से मुझे निहारता।

ऐसी थी उसकी दृष्टि
कि भुलाने पर भी न भूले।
अपनी कहूं तो बेहतर था,
कि मैं मिलती ही नहीं उससे रू-ब-रू।
अलबत्ता याद रखूंगी मैं सदैव
कोहरे में डूबी वो दुपहरी।
वह रविवार। जो बीता
उस सलेटी ऊंचे मकान में
नेवा* किनारे समुद्री-द्वार पर।
0 जनवरी, 1914

अन्य कविताएं

---

* नेवा — नदी, जिसके तट पर लेनिनग्राद बसा है।

1.

क्या तुमने भेजा है
शाम की ठंडी हवा का झोंका ?
तोहफ़े की तरह
लेनिनग्राद के उजाड़ चौराहों से
अथवा कुहरिल लिथियन—मैदानों से ?

क्या तुम्हीं ने बाले हैं
आसमान में—मेरे वास्ते
एशियाई तारे ?
मेरी पीड़ा और विषाद पर
क्या तुम्हीं ने छितराया है—
सघन गाछ ?
0 ताशकंद, मार्च, सन 1942

2.

मेरी स्मृति—गो बहुत पुरानी मंजूषा में
जतन से रखी है मुस्कुराहट,
रूपहला केश,
रखी है पेंचभरी पुरानी पाग।
सहेजकर रखी है उसमें
अनार की नाटी झाड़ियों की
अलमस्त वातास।
0 ताशकंद, 16 मार्च, सन 1944

3.

यह तीसरा वसंत है मेरा
        लेनिनग्राद से दूर।
तीसरा—और मुझे लगता है
कि यह होगा आखिरी।
लेकिन अभी नहीं, कभी नहीं
भूलूंगी मैं—
भूलूंगी नहीं मरते दम
कि यहां कितनी प्रिय थी मुझे
पेड़ों की छांह तले कल-कल करती जलधार।
प्रिय थे चमचमाते आड़ू,

प्रिय थी बैंगनी बाड़,
रोज-रोज निखरती उनकी सुवास।
ऐसे में भला कौन कहेगा
कहेगा कौन गुस्ताख
कि मैं हूं वतन से दूर—
दूर किसी परदेस में।
0 ताशकंद, सन 1944-56

4.
यदि तुम मौत हो—तो काहे को कलपती हो इस कदर,
और यदि हो खुशी—तो भला कहां होती है खुशी ऐसी ?
0 ताशकंद, नवंबर, सन 1942

5.
संकट की इस घड़ी में
जब भी मैं पुकारती हूं—अपने मित्रों को
उनके घरेलू नामों से
मेरी इस विलक्षण पुकार पर
मुझे जवाब नहीं देता कोई
जवाब देती है—
फक़त ख़ामोशी।
0 8 नवंबर, सन् 1943

6.
अब इस भरीपूरी दुनिया में क्या बचा है शेष ?
शेष बची है रोटी—बचे हुए के वास्ते,
शेष बचे हैं—मिठासभरे बोल,
शेष बची है चिड़िया की—
टी-वी-टी-टुट्-टुट्।
0 सन 1941

7.
मैंने दफ़्नाया उन सबको,
जो दफ़्नायें नहीं गये थे ठीक से।
मैं कलपी-रोई सबके लिये, मगर
मेरे लिये रोयेगा कौन ?
0 सन् 1958

8.

मैं तुम्हें सचेत करती हूं
कि मैं जी रही हूं आखिरी बार—
न कुएं में भरे जल की तरह,
न नरकुल, न सितारों की तरह,
न दूर बजती घंटियों की तरह
मै तंग नहीं करूंगी लोगों को
टपकूंगी नहीं उनके सपनों में
जैसे कि टपकती है कराह
या जैसे आर्तनाद।

बीमार—तीन माह—
पड़ी रही मैं बिस्तर में
अब भय नहीं रहा मुझे मौत का
बहुधा मुझे लगता है सपनों में
कि मैं हूं अतिथि—
अपनी ही देह के चौखटे में।

0 सन् 1959

कविता

कैलाश पांखें तोल रहा है

बलदेव वंशी

(ऐलोरा की गुफ़ा—कैलाश देखने पर)

इस पहाड़ को चुनो !
श्वास के सहारे
नीचे तक उतरते जाओ
इसकी समूची धड़कनों को सुनो !

इस के भीतर जगमगाता
प्रकाश कुंड
लहर लहर सोया है
छिपा मारतंड
किरण-किरण सोया है।

कैलाश मंदिर है यह :
शिव कल्पना समूची।
इसे क्षण-क्षण तराशो
इसे कण-कण जगाओ
सोया यहां इसी धरा पर
सदियों से सौंदर्य

इस की धमनियों में प्रवाहित
इतिहास की चिन्मयी स्मृतियां
इस की रगों में बजता
भूगोल का ज्योतित रहस्य
अणु-अणु में प्रतीक्षित
एक महा स्वप्न पूर्वज।

चेदस पंखों पर
उड़ता आया एक मुक्ति-रथ
उतरा — यहां
पथरा गया
देवता यहां
काल से ठोकर खा गया।

अपने चैतन्य स्पर्शों से
पत्थर के सपनों को पुन: जगाओ
रागों के आप्लावित नद में
इन चट्टानों को नहलाओ
चट्टानें ये
बड़ी मनस्वी हैं
शिलाएं ये
बड़ी तपस्वी है

इन की शिराओं से
पुरखों के आशीष ध्वनित हैं
स्वर्गीय उड़ानों के लक्षित क्षितिज
अभी अस्त हैं
मिट्टी की जड़कन में बंदी
भय से स्तंभित

छेनियों की धैर्यधर्मी तराशों से
प्रहारों में धरी
संकल्प-मर्मी तलाशों से
आत्मकर्मियों के
ऊष्मित श्वासों से
और चक्षुओं की चुम्बक चिन्गारियों से
हो रहे प्रकम्पित
ये प्रस्तर···

विह्वल और संकल्पवान आहों में
फुंक-सिक रहा पहाड़ का भारीपन
पोर-पोर में
अंगड़ाई ले रही शैल थिरकन

सदियों ठिठुरी अद्रि-आत्मा में स्पंदित
कला का जादू बोल रहा
इतिहास-पुरुष क्रुद्ध
अपनी आंखें खोल रहा

और अब पुन:
धरा आकाश मापने को आतुर
समूचा कैलाश
अतुलित पांखें तौल रहा। □

कविता

दो बूंद

□ राजकुमार कुम्भज

दो बूंद
तुम्हारी आंखों में
दो नक्षत्र, संगीतमयी !
कि सर्द सपने ?

मैं
पहचान नहीं पा रहा हूं
कि वे दो बूंद तुम्हारी आंखों में
तुम्हारा सूर्योदय है
कि सूर्यास्त ?

तुम
जीवित समुद्र
स्मृतियों में भीगा रूमाल
पसीना-पसीना पुकार
कि तेज़ बारिश ?

मैं
पहचान नहीं पा रहा हूं
कि यह तेज़ बारिश स्मृतियों में
तुम्हारी संभावना है
कि अवसाद ?

तुम
हांफती नदी
सुलगते सवालों की सुरंग
झर-झर झरते हरे पत्ते
कि बेसबब सफर ?

मैं
पहचान नहीं पा रहा हूं
कि ये हरे पत्ते तुम्हारे मन में
तुम्हारी उपस्थिति है
कि दुर्दिन ?

दो बूंद
तुम्हारी आंखों में
एक रचनात्मक-आग
कि प्रलय ! □

दो क्षणिकायें

नदी

□ महाराज कृष्ण 'भरत'

मत कैद करो मुझे,
मैं—
भीतर-ही-भीतर
प्रवाहित होने वाली नदी हूं
कश्मीर उजड़ने से पहले ?
और
उजड़ने के बाद
जंगल-सा माहौल मिला
और
चिड़ियाघर-जैसा जीवन ! □

अब

पहले
तुम, सरिता थीं
अब
रेत-ही-रेत हो। □

प्रश्न हमारा नहीं

☐ एम. के. भान

इस शहर के रास्ते —
दौड़ते हैं
पर — घोड़ों की टांगें —
चल नहीं पातीं
लोगों के जूते —
बिखरे पड़े हैं
समर स्थली में
पर सिर ही लुप्त हैं
रुक नहीं पाती —
जूतों की दौड़
अधमरे पंखों की उड़ान
हर चीज़ है —
दिशाहीन
समय से तेज़
बन्द नहीं होता —
धुएं का सफर
रुक नहीं पाते —
आंसुओं के धारे
चांद की उदासी
यह शहर — कब मुक्त हो ?
आहों से
पनाहों — से
गुनाहों — से
प्रश्न हमारा नहीं !
फुटपाथ पर —
सोई हुई भीड़ के —
टकराते हुए — सिरों का है। ☐

तीन कविताएं

शिखर और ढलान

□ कमलेश भारतीय

माना कि
पहाड़ ऊंचे होते हैं
और
उन पर चढ़ना
दुष्कर
पर पहाड़ पर चढ़ने का
अपना ही सुख होता है
जैसे हम
मंज़िल पाने के लिये
शिखर पर पहुंचने के लिये
चुनौती स्वीकार कर रहे हों
ढलान पर उतरते समय
आदमी हारा हुआ महसूस करता है
ढलान पर उतरना
अपने ही फैसले से
वापसी जैसे लगता है
ढलान और शिखर में से
एक का चुनाव
जरूरी है··· निहायत जरूरी। □

संबंधों का द्वार

वर्षों से
संबंधों का द्वार
मजबूती से बंद, अनबोले की दीवार से ढका था।
मैंने सिर्फ
हल्की सी दस्तक दी
द्वार कब भुरभुरा गया
पता ही नहीं चला
अनबोले की दीवार ढह गयी।
और द्वार के पार
कोई स्वागत में
बाहें फैलाये खड़ा था। ▢

पांव और मन

अभी मैं
अपने पांवों के नीचे की
ज़मीन टटोल रहा हूं
और
तय नहीं कर पा रहा
कि
कच्ची पगडंडी पर चलने के आदी
अपने धूल भरे पांवों को
चमचमाते फर्श पर रखूं तो कहां ?
दरअसल
ये मेरे पांवों का नहीं
मेरे डगमगाते मन का कसूर है
पांव सिर्फ
मन के इशारे पर चलते हैं
और बता देते है कि
आदमी की मंशा क्या है !!! ▢

रूपक

नयन खोलो, नगर को सैलाब ले गया

▢ मुहम्मद यूसुफ़ टेंग

"इस्मश मालूम, व जिस्मश मादूम"[1]

कश्मीरी लोक संगीत की तरंगों पर सुपर इम्पोज़—अज़ाने—की आवाज़ उभर कर धीरे धीरे पृष्ठ भूमि में रहती है और उस पर ये सुपर इम्पोज़—

यादे अहृदे रफ़्ता मेरी खाक को अक्सीर है।
मेरा माज़ी मेरे इस्तक़बाल की तफ़्सीर है।
सामने रखता हूं इस दौरे निशात अफ़्ज़ा को मैं।
देखता हूं दोश के आईने में फरदा को मैं।

ध्वनि—1—राज तरंगिनी का लेखक कल्हण देशभक्ति के एक भावाकुल क्षण में लिखता है—जो चीज़ें स्वर्ग में भी दुर्लभ हैं, कश्मीर में सुलभ हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रकृति ने कश्मीर की कुसुमित धरा को अपनी उदारताओं से सम्पन्न किया है। इस ईश्वरप्रदत्त को संवारने और निखारने में कश्मीरियों की सौंदर्य रूचि ने शानदार हिस्सा लिया है। कश्मीर का कवि बिल्हण जब दक्षिण जाकर अपने वतन को याद करता है तो पुकार उठता है।

ध्वनि—2—जिस प्रवरपुर के करीब बहने वाली वितस्ता नदी के दोनों किनारों पर खड़े नवयुवक स्त्री पुरुषों के सुंदर जोड़े स्वच्छंदता से चुंबन में व्यस्त दिखाई देते हैं और जब ये जोड़े तरंग में आकर गले मिलते हैं तो इनकी मालाओं से टूट

1. उसका नाम मालूम है पर उसका शरीर कहीं नहीं।

कर गिरने वाले मोतियों से महादेव की प्रिया वितस्ता नदी तारामंडल शोभित आकाश की स्वर्णगंगा का रूप धारण करती है।

(पृष्ठभूमि में भैरव राग का संगीत और जलतरंग की आवाज़)

ध्वनि—1—लेकिन आज कश्मीर अपने रहस्यमय और धुंधले अतीत की लंबी सुरंग से निकलकर इक्कीसवीं सदी की देहरी पर पांव रखने की तैयारी में है। एल्विन टॉफ़्लर के कथनानुसार यह कदम अपनी तेज़ी और विस्मयकारिता की दृष्टि से उतना ही बड़ा है जितना अंधकार काल से सभ्यता के युग तक मनुष्य का सफर—कश्मीर में क्रांति का यह हंगामा 'फ़िराक़' के इस शेर की याद दिलाता है—

देख रफ़्तारे इनकिलाब फिराक़
कितनी आहिस्ता और कितनी तेज़

पर इनक़िलाब का यह धीमा क़दम हर बीतने वाले दिन के साथ एक सरपट दौड़ में बदल रहा है।

ध्वनि—2—रफ़्तार की इस तेज़ी में मानव परम्परा की कुछ बहुत सुंदर विरासत खत्म हो रही है। कश्मीर के संदर्भ में देखा जाए तो ऐसा लगता है कि इक्कीसवीं सदी का कश्मीरी खुद हमारी प्रजाति के लिए एक आश्चर्यनगर और जादूघर होगा। विश्व संस्कृति का जो तेज़ रेला इस वक्त असंख्य एवरेस्ट चोटियों को पददलित करके बह रहा है, उसमें क्षेत्रीय सस्कृतियां कुछ अमूल्य कुसुमकुंज खत्म हो रहे हैं और एकरंगी का वह भद्दा चेहरा उभर रहा है, जिसके हाशिए से, छोटी संस्कृतियों के रत्न उखाड़ लिए गए है। मशीनी युग का शोर चारों तरफ हंगामा मचा रहा है।

(मशीनों के चलने की कर्कश आवाजें, जिन पर रंबा संबा की पश्चिमी धुनें बजाई जाएं)

ध्वनि—1—कश्मीर पहले ही अपने भव्य भंडार की कुछ निधियां गुम कर चुका है। इस रंगीन फ़ानूस की कुछ रंगीन शमाएं बुझकर 'बुझे चिराग़' बन चुकी हैं और कुछ और शमाएं (बत्तियां) भी तेजी से थरथरा रही हैं। गोया कुछ ऐसी स्थिति पैदा हो गई है, जिसको देखकर अनीस का यह शेर याद आता है—

(गद्य की तरह शब्दश: पढ़ा जाए)

अनीस दम का भरोसा नहीं, ठहर जाओ
चिराग़ लेके कहां सामने हवा के चले।

(पृष्ठभूमि में झंझा चलने की आवाज़)

ध्वनि – 2 - आइए देखें, हमारी विरासत का कितना हिस्सा समय का लुटेरा लूट चुका है और बयार मुर्झाने वाले हैं।

(पृष्ठभूमि में पानी की आवाज़ के सीने पर इस गीत के बोल उभरते हैं :—

जाली के पिंजर[1] के बीच नज़र डालो
बाले ! हमको न भुला देना।

ध्वनि —1—'नाका-ए-यार'[2] जिसको 'टामस मूर' ने लालारूस के नगर का राजमार्ग कहा था। इस समय जिस सड़क पर धूल उड़ रही है, और जिसके दाएं बाएं सड़ी काई से भरपूर गंदे पानी के जोहड़ नज़र आते हैं, आज से सिर्फ चंद साल पहले वहां स्वच्छ पानी की एक नदी बहती थी जिसमें श्रीनगर की सुंदर मगर शर्मीली सुंदरियां अपने सुंदर मुखड़ों की परछांई देखकर लावण्य पर मदोन्मत्त हो जाती थीं और फिर अपने कमल से रूपहले हाथों से इस स्थिर पानी को भंवरों की बातियां पहनाती थीं··· कहीं दूर बैठे हुए उनका कोई मतवाला इस अदा की शोखी पर जैसे महनूर का यह शेर गुनगुनाता था—

सुंदरियों ने कब किसी को सीधा रूप दर्शाया है।
इसीलिए तो चांद पानी की लहरों में डोलता है।

(इस शेर को किसी पुरुष स्वर में किसी वाद्य के बिना पेश किया जाय)

ध्वनि—2 नाला-ए-यार शहर की शोभा ही नहीं, बल्कि इसकी पहचान भी था। सारे एशिया और अफरीका के किसी और शहर के पांव में इतने मनमोहक घुंघरू नहीं सजे थे। यह इस शहर को एक 'करैक्टर' प्रदान करता था। इसके अलावा यह हमारे पास एक महान पूर्वज की अमानत था। इसके बारे में विदेशी सैलानी 'चार्म्स ऑफ कश्मीर' का लेखक स्कॉट ओ' कोनर बड़े अचरज से कहता है—'कोई मुझे ज़रा बताए तो सही कि दुनिया में कहां ··हां, सारी दुनिया में किस जगह इतनी स्वच्छ और सुंदर नदी विलास भवनों की दहलीज छूती है और बाज़ारों में से नृत्य करती हुई बहती है 'ट्रैव्हल्ज़ इन कश्मीर' का लेखक जी० टी० वैनी लिखता है कि 'नाला-ए-यार श्रीनगर की शायद सब से दिलचस्प चीज़ है। यह योरुपी पर्यटकों को वेनिस की याद दिलाता है। इसके किनारों पर खड़े मकान और उनकी खिड़कियों पर बैठी हुई नवयुवतियां इसे सपनीले घर का सा आनंद प्रदान करती हैं।

ध्वनि – 2—नाला-ए-यार श्रीनगर में जल परिवहन का साधन ही न था बल्कि उसके द्वारा आवश्यक वस्तुएं उदहरणत: सब्ज़ी तरकारी, फल और दूसरी चीज़ें शहरियों की चौखट पर पहुंच जाती थी। यह एक जीवित नदी थी और शहर के सामाजिक जीवन का एक भाग। लेकिन अब यह शहर के नासूर का संडास है

---

1. पुराने कश्मीरी मकानों की खिड़कियों के पल्लों में लकड़ी से डिज़ाइन बुने होते थे।

और बाढ़ का पानी अब शहर में आता है तो महीनों मकानों के अंदर छल-छल करता रहता है ।

ध्वनि—2—पर अब यह जागृत दौलत सो चुकी है । इसको मौत की नींद सुलाने के लिए यह तर्क दिया गया कि यह गंदा हो गया था । लेकिन, यह गंदगी भी तो इन्सानी उपेक्षा का एक भाग थी । सवाल यह है कि अगर हमारे बाज़ू पर कोई फुंसी निकल आये तो क्या बाज़ू काट देना ठीक है ? यह समय तो शल्यचिकित्सा का सर्वोच्च समय है जब हम आदमी के ढांचे को कायम रखने के लिए उस के अंदर धड़कने वाला हृदय तक बदल सकते हैं और यह भी कि जिस धरोहर का हम अनुसंधान न कर सकें, क्या उसमें हाथ डालना उचित और न्याय संगत है ? नाला-ए-यार के पानियों में अब मौजें नहीं उठतीं न इसके तट पर पाज़ेब की छनक सुनाई देती है लेकिन यह हमारे लिए एक दर्द भरी दास्तान के रूप में उंगलियां उठाता रहेगा—

> दाग़े फ़िराक़ हसरते शब की जली हुई
> इक शम्मा रह गई थी सो वह भी ख़ामोश है।

(यह शेर किसी स्त्री स्वर में दुखी संगीत के साथ सुनाना होगा)

ध्वनि—2 - कश्मीर में व्यापार और जल्दी मुनाफ़ा कमाने की प्रवृत्ति ने अच्छी चीज़ों पर असर डाला है । उनमें हमारा मशहूर अंबरी सेब शामिल है । जहांगीर ने अपने 'तुज़्क' में इसका जिक्र रोचकता के साथ किया है । वाल्टर लारेंस भी इसकी रंगत और स्वाद की प्रशंसा करता है । शायद इसका नाम 'अंबरी' इसलिए पड़ा क्योंकि इसमें एक ऐसी सुखद खुशबू आती है जो किसी और फल के साथ संबद्ध नहीं । हां यू॰ पी॰ में तेज़ महक वाले आम का नाम भी अंबरी चला आ रहा है । जहां तक मेरी जानकारी है यह सेब सिर्फ कश्मीर में पैदा होता है और विशेष तौर पर शोपियन की ज़मीन इसको रास आती है ।

ध्वनि—1—लेकिन 'अंबरी' अब अंत के किनारे पर खड़ा है । इसका पेड़ यद्यपि एक सौ साल तक फल देता है लेकिन आरंभ में इसे फलीभूत होने में पंद्रह वर्ष लगते हैं । इतनी फ़ुर्सत अब किसी को नहीं और न ही अब इन विलायती सेबों की खेती करते हैं जिनके बूटे चार पांच साल तक फसल देना शुरू करते हैं । अब अंबरी के पुराने पेड़ किसी वयोवृद्ध बुजुर्ग की तरह अनजाने, बेपहचान और अपरिचित होने को तैयार बैठे हैं लेकिन, नये बूटे लगाने की ओर किसी की रुचि नहीं ।

ध्वनि—2—इस वस्तुस्थिति का परिणाम यह है कि इसके ग्राहकों को भी इसका स्वाद भूलने लगा है । चूंकि इसकी मांग कम हो रही है इसलिए इसके नये बूटे नहीं लगते । इसलिए यह बाज़ार में ग्राहक भी नहीं मांगता । इस शैतानी चक्कर में कश्मीर की सुगंध से प्लावित यह स्वर्गीय वृक्ष अब आखिरी सांसें गिन रहा

है। हमारी विश्व प्रसिद्ध 'कानी' शाल का भी यही अंजाम हुआ था—

पत्ता-पत्ता बूटा-बूटा हाल हमारा जाने है

जाने न जाने गुल ही न जाने बाग तो सारा जाने है

ध्वनि—2—कश्मीर में लोगों के नाम भी अब पुरानी केंचुल उतार रहे हैं। अब 'ज़ून', 'रहमत', 'रहत', 'च'र', 'कंतिज', 'द्यदर', 'स्वन्दर', 'होर', 'अरिन्य', 'ज़ुनिन्य', 'खोतन', 'अशि'' 'पोशिमाल', और 'हीमाल' की परिचित आवाजें कानों में नहीं गूंजतीं। इन नामों में कश्मीरियत की महक और कश्मीरी स्वन-रचना की झंकार कानों में शहद घोल रही थी, अब वह अजात हो रही है।

ध्वनि—1—मर्दों के नाम भी अब तेज़ी से चोला बदल रहे हैं। मफ़ूर, सुब्हान, दामोदर, बीरबल, गोपाल. खलील और सोंती जैसे नाम नहीं रखे जाते। पहले सिर्फ नामों से कश्मीरी जाति का अंदाज़ा लगाया जा सकता था। अब यकरंगी के रोलर ने यह भेद मिटा दिए हैं। रसूल मोर फिर जन्म ले तो उसे अपने इस गीत की प्रियतमा अजनबी मालूम होगी—

चली खेलने चंचल बाला 'पोशिमाल'

ध्वनि—1—कश्मीर की शाल सारी दुनिया में प्रसिद्ध है और इसने सम्राटों, साधुओं, सुंदरियों और बुद्धिजीवियों सभी को शरीर का सौंदर्य प्रदान किया है। कश्मीर का प्रसिद्ध संस्कृत कवि 'बिल्हन' आज से करीब एक हज़ार साल पहले शाल के कच्चे माल यानी पश्म का ज़िक्र इन शब्दों में करता है—

"कोमल तंतुओं से बने हुए कस्तूरी की सी सुगंध देने वाले 'तोश' कम्बल वितस्ता नदी के ठण्डे पानी में स्नान करके स्वर्ग जैसा आनंद देते हैं।"

ध्वनि—2—इस पद में शाह तोस का ज़िक्र किया गया है। जो दुनिया में पार्चों का सम्राट और सम्राटों का पार्चा स्वीकार किया गया है। शाह तोस का पश्म तिब्बत या लद्दाख की एक विशिष्ट बकरी 'च़ुस'[1] से मिलता है, लेकिन इसे सिर्फ कश्मीरी औरतों के शिल्पी हाथ ही कात सकते हैं। इसकी शालें अपने हल्केपन के बावजूद दुनिया के सबसे ज़्यादा गरम पार्चों में गिनी जाती हैं।

ध्वनि—1—इस शाल को ढाके की मिथक बनी मलमल की तरह अंगूठी के छेद से गुज़ारा जाता है। इसके अलावा इसके साथ कुछ औषधीय गुण भी जोड़े जाते हैं। कहा जाता है कि इसके पहनने से वक्ष के रोग और वायुरोग के अलावा दिल के रोगों की भी रोक हो जाती है। इसीलिए यह सदा राजाओं, रानियों और रईसों का पहनावा रहा है। इस समय भी यह दुनिया में सबसे अधिक मूल्यवान पार्चा माना जाता है।

1, यह 'च़ुस' कश्मीरी में प्रयोग बाहुल्य से 'तुस' फिर 'तोस' बन गया जो 'तोश' का मूल है।

ध्वनि—2—लेकिन शाहतोस भी अब उन्नति से अवनति की ओर आ रहा है। इसके कच्चे मसाले के सोते शुष्क होते जा रहे हैं। इसके कातने वालियों को अपनी दृष्टि-विदारक मेहनत का उचित मेहनताना नहीं मिलता। इसलिए इसके गाहक सिमट गए हैं। राजा गए लेकिन, उनकी जीर्ण व्यवस्था के साथ यह भव्य विरासत भी दम तोड़ रही है जिसका उल्लेख रसूल मीर ने इस सेनानी अंदाज़ में किया था—

मैंने हजारों तोस के सूत्र काते
मेरा मदन मुझे थकान व अवसाद से तोड़ रहा है
यह सब मैं उसी के लिए तो कर रही हूं
सखी, यार को मेरी विनती सुना।

अमीन 'कामिल' इस भयावह स्थिति को यों अभिव्यक्ति देता है—

तोश कातने वाली को जाने कब झपकी आ गई है
पर चरखे फिर भी घूमते जा रहे हैं
कल का इंतजार कर।

(इस शेर को किसी स्त्री स्वर में सितार की हलकी गत के साथ बांधा जाए।)

ध्वनि—1—कश्मीर का खास नाज़ो अंदाज़ और विशिष्ट रूपाकार रखने वाला निर्माण-शिल्प खतम हो रहा है। इन पारम्परिक घरों की छत भोजपत्र पर मिट्टी डालने से बनती थी, जिन पर वसंतागमन के साथ ही अनार व 'सोसक' के फूल दृष्टि को दिव्य बनाते थे। इन मकानों में 'रवाद्ध', ऐवाने अरूसी, माहताबियां, डालान और वभाल[1] होते थे जो हमारे लोक गीतों में बार बार बांधे गये हैं। लेकिन अब हर जगह सीमेंट, कंक्रीट और टीनढ की दुकानें नज़र आती हैं।

ध्वनि—2—मुग़ल सम्राट जहांगीर कश्मीर के बड़े प्रेमियों में से एक था। उसने अपनी 'तुज़क' में लिखा है कि कश्मीर को देश न कहो। यह तो प्रकृति के हाथ का लगाया हुआ एक उपवन है। उसने अपने दरबारी और श्रद्धास्पद उस्ताद मंसूर से कश्मीर के कोई एक सौ खास फूलों की तस्वीरें तैयार करवायीं।

ध्वनि—1—जहांगीर ने यहां के फूलों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उनमें से खास तौर पर ऐसी खुशबू होती है जो सिर्फ कश्मीर के साथ जुड़ी है। कश्मीरी गुलाब सिर्फ एक उदाहरण है। यारों ने गुलाब की क्या-क्या किस्में लगाई हैं पर वे हमारे ऐंद्रिजालिक गुलाब के मुकाबले में कागज़ के फूल मालूम होते हैं जिसमें रंग की बनावट तो है लेकिन खुशबू की आत्मा नहीं। यद्यपि किसी ने कहा है कि—रंग हज़ारों, खुशबू एक।

ध्वनि—2—कश्मीरी फूलों में 'रंगवल', 'आरवल', 'मसवल', 'थनिवल', 'टेकबटन्य' 'अछि पोश', 'न्योन्य पोश', 'अलमदार पोश', 'नीर्य पोश', 'नुन पोश' वगैरा

हमारे लोकगीतों तथा सूफ़ियाना संगीत में बार-बार गूंजते हैं लेकिन विलायती फूलों की चढ़ाई ने इन शर्मीली राजकुमारियों को करीब बेपहचाना बना दिया है। जंगलों की बेदर्दाना कटाई और घासचराई की ज़मीन के जबदस्ती कब्जे ने इन्हें पीछे धकेल दिया है। अब आमलोग तो आम, बहुत से माली-मवाली भी इन फूलों की पहचान से वंचित हैं। अब कोई 'राज़दान' कोई संबोधित करके कहे—

अरूसे लाला मुनासिब नहीं है मुझ से हिजाब
कि मैं नसीमे सहर के सिवा कुछ और नहीं।

(यह मिसरा किसी मर्दाना आवाज़ में हल्के वाद्यों के साथ गाया जाएगा)

(शहनाई के लिए)

आवाज़ —1— कश्मीर के मनोहर संगम पर सभ्यताओं की विभिन्न धाराएं कुलेल करती हैं। इस आंगन में नाग, द्रविड़, यूनानी, चीनी, अजमी, मुगलाई और अरबी प्रभाव का इंद्रधनुष खिलता रहता है। सभ्यता के इन प्रभावों का सुंदर प्रभाव कश्मीर के उन ज़ेवरों में नज़र आता है, जिनसे कश्मीरी दुल्हन को सजाया जाता था।

आवाज़—2—ऐसे ज़ेवरात में 'दसवाना', 'कनवस', 'डेलना', 'होंज़र', 'हंग तूमार', 'ओन वोज', 'ग्वडकोर', 'हटिफोल', 'बावट', 'कनवोज', 'खोल्यमाल', 'कंठमाल' वगैरा लोकगीतों में ही नहीं बल्कि हब्बा खातून, महमूद गामी जैसे शायरों के यहां भी बार बार झिलमलाते हैं।

आवाज़—1—लेकिन अब ये ज़ेवर धीरे-धीरे लेकिन निश्चित रूप से कुछ बेशक ज़्यादा महंगे मगर स्वल्पार्थक प्रतीकात्मक और कम नफ़ीस ज़ेवरात के मुकाबले में टकसाल से बाहर हो रहे हैं। यहां तक कि अब कश्मीरी पंडितों और मुसलमानों के ज़ेवर भी अपनी व्यष्टिता खो रहे हैं। 'डेजिहोर' जैसा प्राचीन ज़ेवर भी अब सिमट रहा है। वह 'डेजिहोर' जो कश्मीरियों ने गौतम बुद्ध की मां मायादेवी को भी पहनाया था और इस तरह से उसे कश्मीर की बेटी बनाया था।[1]

आवाज़—2— इतना ही नहीं बल्कि शादी-ब्याह की दूसरी संस्थाएं, जैसे साजगर, वनवुनगर आदि भी मग्न सो रहे हैं। और तो और, शादी-ब्याह की बड़ी रंगीन तथा शानदार निशानी यानि पालकी या 'ज़ोपान' की रीत खत्म हो रही है। पालकी जिसके ऊपर रेशम की ओढ़नी डाली जाती थी जिसको कहार हौले-हौले ले जाते थे और जिसका आधा पर्दा उठाकर नई दुल्हन अपने बाबुल से विदा लेती

---

1. श्रीनगर के संग्रहालय में डेढ़ हजार साल पुरानी यह पत्थर की मूर्ति अब भी इस बात का ऐलान करती है।

थी जिसके अंदर वह ऐसे ही मसनद पर बैठती जैसे सीप में मोती या मखमल में लैला।

(सुबह सवेरे मुझ को पीहर जाना है, सखियो, मेरा शृंगार करो।)

(महमूद गामी के इस गीत का एक पूरा बंद बजाया जाए)

आवाज—1—कश्मीर में मां बाप कुछ दशक पहले तक अपनी लाडली बेटियों का हाथ दूल्हे के हाथ में देने से पहले इस बात की जांच करते थे कि लड़के वालों की दीवार में दीया रखने का जो दीपाधार (चिराग दान) बना है उससे बहने वाले तेल की धारा कितनी लंबी और मोटी है जिससे दूल्हे के घर की खुशहाली का अंदाज़ा होता था।

आवाज़—2—इस दीपाधार को कश्मीरी में 'चंगियतार' कहते हैं लेकिन न चिराग़ बाकी रहे और न चिराग़दान। बिजली और लालटेन की रोशनी ने इन्हें पुरातन-जीर्ण बना दिया और इसके साथ ही उन मुहावरों और उपमाओं को भी जो चिराग़ और चिराग़दान से संबद्ध थे। प्लास्टिक कल्चर और नायलान-संस्कृति ने हमें अपने खिलौनों और पारम्परिक गुड्डे-गुड़ियों से भी वंचित कर दिया है। 'बुरबतन', 'मच्‌पिपिन्य': 'वतनि गुर', टेकरी के घोड़े और गायें, शिरिन्य और दूसरे खिलौने अब शायद ही नज़र आते हैं। अब कश्मीरी बच्चे जिन खिलौनों से खेलते हैं उनमें न कश्मीर की मिट्टी की बू बास है न कश्मीरी कारीगर की शिल्पकला की विधि और न पृष्ठभूमि में कश्मीरी लोकसंगीत का हल्कोरा। अब हमारे पारम्परिक खेल तक बस कुछ दिनों के मेहमान नज़र आते हैं।

वो है कौन ? मैं हूं कौन ?
तू भी बोल कि तू है कौन ? ...

(इस गीत का एक पूरा बंद बजाया जाय)

आवाज़—1—कश्मीर अपने कौशल के लिए सारी दुनिया में मशहूर है। यहां के कुशल शिल्पी अपनी उंगलियों से जादू जगाते रहे हैं। लेकिन अब इनमें से कुछ शिल्प औद्योगिक क्रांति के थपेड़ों को न सह कर एक-एक करके बुझ रहे है। हमारी शालों की कुछ 'तरहें' यानि डिज़ाइन अब ज़माने के अंधे कुंए में डूब कर गुम हो चुकी हैं जैसे 'अनोर पोश', 'केम्प पोश', 'हीवन' वगैरा। इसी तरह 'महीनकारी'[1] की कला सम्पूर्ण रूप से समाप्त हो चुकी है और दुनिया के कुछ बड़े अजायबघरों में कश्मीरी महीनकारों की बनाई हुई सुंदर कलाकृतियां इनकी मात्र साक्ष्य रह गई हैं।

आवाज़—2—मध्यकाल में कश्मीरी कागज ईरान से लेकर दक्षिण भारत तक सभी की

---

1. कश्मीर में मीनाकारी का नाम।

जरूरतें पूरी करता था। चुनांचे इस ज़माने में लिखे हुए खत्ताती, धर्मशास्त्र और साहित्यकारिता के कलमी नुस्खे कश्मीरी कागज़ पर लिखे गए हैं और दुनिया के विभिन्न और प्रसिद्ध संग्रहालयों में सुरक्षित हैं।

आवाज़—1—कश्मीरी कागज़ अपनी चिकनाहट, मज़बूती और सफ़ाई के लिए अलग महत्त्व रखता था। इसकी एक और विशेषता यह थी कि इसकी बनावट के समय इसमें ऐसी जड़ी बूटियां डाली जाती थीं जिनके असर से इसमें दीमक नहीं लगती थी। इस कागज़ पर लिखे गए अक्षर जरूरत के समय धोए जा सकते थे और फिर उस पर नया लेख लिखा जा सकता था।

आवाज़—2—लेकिन हमारी बहुत सी कुशलताओं की तरह अब इसका निशाना भी सिर्फ उस मुहल्ले के नाम से चलता है जहां यह बनता था। 'कागज़गारी' मुहल्ले के साथ इस किस्म के कुछ और मुहल्लों के नाम सुनिए 'कमानगरी पोरा' 'तीरगरी पोरा', 'काचगरी मुहल्ला', 'रोशनगरी मुहल्ला', 'शीशागरी[2] मुहल्ला, साज़गरी मुहल्ला वगैरा-वगैरा। इतना ही नहीं। कश्मीर की वह खास कलम भी खत्म हो गयी है जो दलदलों में उगाई जाती थी। यह जब कागज़ पर चलती थी तो वह संगीत पैदा होता था, जिस के बारे में गालिब ने लिखा है—

आते हैं ग़ैब से यह मज़ामीन खयाल में,
गालिब सरीरे खामा नवा-ए-सरोश है।

तीरगरी मुहल्ला, कमानगरी मुहल्ला वगैरा कश्मीरियों के खुदमुख्तार सुलतान शहमीरी वंशों ने बसाए क्योंकि उस समय कश्मीरी अस्त्र शस्त्र प्राप्त करते थे और यह उनकी आज़ादी के निशान थे। लेकिन बाद में मुगलों के ज़माने में इस तरफ ध्यान कम होने लगा और कश्मीरी की बगल में कमान की जगह कांगड़ी थमा दी।

आवाज़—1—कश्मीर के कुछ अहम त्योहार और समारोह भी ज़माने की असभ्यता के शिकार हो गए हैं। बादामों के बौर का हमारा एक ऐसा मेला है जिसकी जड़ें प्राचीन काल से जुड़ी हुई हैं। स्व० मुख्य मंत्री बख्शी गुलाम मुहम्मद ने इसे एक नया प्रोत्साहन और प्रगति दी। बादाम के पेड़ पर रूपहली बौर, उनके साये में झुमके पहने सुंदरियां, समावार से उठने वाली सोंधी सोंधी भाप और फिर 'छकरी' के थिरकते बोल—

---

2. कश्मीरी शमशेर पानीदार बनाने में निपुण नहीं थे। इसलिए शमशेरगर मुहल्ला या कत्लगरी मुहल्ला मौजूद नहीं। अलबत्ता इसके बहुत बाद में आने वाली बंदूक के नाम पर एक गली जरूर है 'बंदूक खार कूचा' (बंदूक के लोहारों का कूचा)

या तो वह खंजर मारे

या मेरे घर रात गुजारे

(इस छकरी का एक पद-वरन कोई 'रोफ़' गीत)

आवाज़—1—लेकिन अब यह मेला बस एक कहावत के रूप में ज़िंदा है। 'बादामवारी' हारीपर्वत के जिन मैदानों में 'लगती थी' उनकी प्लाटबंदी की गई है। बादाम के अधिकांश पेड़ सूख गये हैं और सिर्फ कुछ पेड़ एक सुंदर परम्परा पर आंसू बहाते नज़र आते हैं।

आवाज—2—कश्मीर की 'ऋषि' परम्परा की नींव हज़रत शेख नूरूद्दीन ऋषि ने डाली। बाद में इस परम्परा ने एक आंदोलन का रूप धारण किया जो कश्मीरी संस्कृति का झंडा ऊंचा रखता था। जहांगीर इन नेक स्वभाव वाले बुज़ुर्गों का ज़िक्र करते हुए कहते हैं कि ऋषि सादा और अनौपचारिक जीवन बसर करते हैं। किसी को बुरा नहीं कहते। इच्छा, जीभ और मन की मांग रोके रखते हैं। मांस नहीं खाते, शादी नहीं करते और सदा फल के वृक्ष जंगलों में इस नीयत से लगाते हैं कि लोग लाभ उठाएं। इस गिरोह के लोग तकरीबन दो हज़ार होंगे।

आवाज़—लेकिन आज ऋषियों का यह पवित्र जीवन यापन सपना होकर रह गया है। 'इक़बाल' के शब्दों में कहा जा सकता है कि 'अज़ान' की रस्म तो बाकी है, लेकिन 'बिलाल'[1] की आत्मा गायब हो गई है और इस तरह कश्मीर की यह सार्थक और सुंदर संस्था भी सिर्फ जिक्र की चीज रह गई है।

आवाज़—हज़रत शेख नूरूद्दीन ऋषि के बारे में परम्परा है कि उन्होंने हज़रत मीर मुहम्मद हमदानी के हाथ पर बइयत[2] की थी और उनसे आज्ञापत्र हासिल किया था। इस मधुर मिलन की याद में हर वर्ष खानकाहे मुअल्ला से बुज़ुर्ग मठधारियों पर निर्भर जुलूस चारे शरीफ़ जाता था। इस जुलूस में जो शामिल होते उन लोगों को खानकाशी कहा जाता था। ये लोग अलम उठाए हुए और पड़ाव पर पड़ाव नमाज़ पढ़ते हुए चार[3] शरीफ़ में हाज़िरी देते थे लेकिन अब यह रिवायत भी एक भूली बिसरी कहानी बनती जा रही है।

(कोई शेख-श्लोक[4] गाया जाय)

आवाज – कश्मीर में वाद्यों की परम्परा भी अब एक रूपता और एक रसता की लहर के आगे

---

* लोक संगीत * कश्मीरी लोक नृत्य

1. हज़रत मुहम्मद का क्रीत दास, जिसे फिर उन्होंने मुक्त किया था।
2. अनुसरण करने का वचन दिया था।
3. शेख नूरूद्दीन का मक़बरा इस गांव में है।
4. शेख के पदों को श्रुक (श्लोक) कहा जाता हैं।

दम तोड़ रहा है। हमारा 'साज़े कश्मीर' नया, 'वसूल' की शक्लोसूरत ही बदल गई है कश्मीरी 'संतूर' को बजाने वाले मुट्ठीभर कलाकार रह गए हैं हमारी प्रसिद्ध लोक संस्था 'लडी शाह' एक जीवित चीज़ नहीं रही। यह रेडियो और टी० वी० के संग्रहालय में सजाया गया है। पर विशाल और विस्तृत ज़िंदगी में इसका अस्तित्व सिमट कर रह गया है। बिल्कुल उन जानवरों की तरह जो खुले जंगल में तो खत्म हो गए हैं; लेकिन चिड़िया घर में मुफ़्त की रोटी तोड़ते हैं।

आवाज़ —कश्मीर में हारी पर्वत की दक्षिणी तलहटी पर स्थित बड़ा मज़ार अपने समय के विद्वानों का कब्रिस्तान था। यहां कश्मीर के प्रसिद्ध 'बेहकी' खानदान के बहादुर और कवि पुत्र सोये हैं जिनमें सैयद मुबारक अली खान बेहकी जैसा जनरल भी शामिल है। बडशाह की रानी मखदूमा खातून भी यहां दफ़न है। क्योंकि उसका मायका भी बेहकी वंश ही का था। इसके अलावा यहां मुल्ला 'आनी' जैसा उस्ताद चिरंतन नींद में हैं जो मो० अब्दुर्रहमान जानी के शिष्य और चमत्कार पुरुष हज़रत शेख याकूब सरफी के उस्ताद थे।

आवाज़ —लेकिन अब यह मज़ार अपने शिलालेखों के साथ एक गंदी जगह बना है, जहां चौपाये चरते हैं और जुआरी ऊधम मचाते हैं। इस मज़ार के कब्र के पत्थर भी गायब होते जा रहे हैं जो हमारी सांझी संस्कृति का मिश्रण पेश करते थे और जिनपर अरबी और संस्कृत भाषाओं की लिखत दर्ज है।

आवाज़— शहमीरी सुलतानों का वह मकबरा भी खस्ता-व-खराब हालत में है जहां सुल्तान सिकंदर और जैन उलाबिदीन जैसे संकल्पनिष्ठ शासक मिट्टी के फर्श पर सोये हुए हैं। कश्मीर के महान विजेता शहाबुद्दीन की कब्र अभी तक सड़क से पार एक इमारत में निहित और घिरी है।

आवाज़—हद यह है कि कश्मीर के महानतम राजा ज़ैनउलाबिदीन की कब्र अपने उस बिल्लोरी तावीज़ (कब्र के पत्थर) से वंचित है जिसके बारे में उसके दरबारी इतिहासकार जोनराज ने लिखा है—

'यह तावीज़ एक आईने की तरह था जब जुम्मे को लोग फ़ातिहा के लिए आते, यों लगता कि (पृथ्वी तले सोए) बादशाह की मुहब्बत इन्हें अपने सीने के साथ लगाने के लिए खींच कर ले गई।'

खेद है कि इस चुराये हुए बिल्लौर को आज तक पाया नहीं गया।

इस बिल्लौरी तावीज़ को गुलाब सिंह उठा कर ले गया और उसे दवाई पीसने के खरल में ढाल दिया गया—

गुलामी क्या है ? ज़ौक़े हुस्नो ज़ेबाई से महरूमी शालीमार बाग़ को प्रकाश और ध्वनि के मशीनी तमाशे ने पहले ही चौक बाज़ार में बदल दिया है। अब डल झील के गंभीर रहस्य को नंगे दीपकों की तोपें उजाड़ रही हैं और इस स्वप्नलोक को अश्लील विज्ञापन बाज़ी का

(दुख भरा संगीत और इसकी पृष्ठभूमि में धीरे-धीरे उभरने वाली आवाज में मीर तक़ी मीर का यह शेर गाया जाये)

मर्दाना आवाज़ (बहुत लंबी लय में)

किन नींदों अब तू सोती है ऐ चश्मे गिरयानाक।
मिज़गान तो खोल! शहर को सैलाब ले गया।। ☐

मूल उर्दू से अनुवाद—रतनलाल शांत

रचनाकारों से निवेदन

- शीराज़ा में कला, संस्कृति एवं साहित्य से जुड़ी आपकी मौलिक, अप्रकाशित रचनाओं का स्वागत है।
- हाशिया छोड़कर स्पष्ट लिखी हुई या टंकित रचना भेजें। कार्बन कापी नहीं।
- समीक्षा के लिये प्रेषित कृति की कृपया दो प्रतियां भेजें।
- अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखक की अनुमति संलग्न करना अनिवार्य है।
- रचनाओं की स्वीकृति तथा नियमानुसार पारिश्रमिक यथासंभव शीघ्र भेज दिया जाता है। इस विषय में किन्हीं अनिवार्य परिस्थितियों के कारण होने वाले विलम्ब के लिये अवांछित पत्र व्यवहार न करें।
- केवल वही रचनायें लौटायी जा सकेंगी जिनके साथ टिकट लगा लिफाफा संलग्न होगा।

व्यंग्य कथा

बैसाखियों वाला सपना

□ सुरेश सेठ

हर भूखे को रोटी, हर हाथ को काम। अपना देश, अपना राज। जात-पात का भेद नहीं। इन्सान इन्सान में फर्क नहीं। पैंतालीस बरस पुराना यह सपना अब भोर में नहीं आता, जीत को आधी रात को आकर डरा देता है।

पैंतालीस बरस से जीत न जाने कितने काम करने के बारे में सोच रहे हैं। पहले सोचा क्यों न चुनाव लड़ कर दिल्ली का ताज अपने सिर पर रख लें। लेकिन बल्लम उठाने वाला नारा उछालू जुलूस कहां से लाते? फर्ज़ी वोट भुगताने वालों का दाम भी बाज़ार में बहुत ऊंचा था।

जीत ने चुनाव नहीं लड़ा, लेकिन सपना देखने से तो पीछे नहीं हटे। अन्तर केवल इतना पड़ा है कि जो सपना पहले भोर में देखते थे, वह अब आधी रात को आ डरा डरा जाता है।

लेकिन इधर कुछ दिनों से एक और सपना भोर में आ बार-बार जीत को जगा देता है। इन्हें लगता है, इतनी उम्र हो गयी, एक बार भी पहाड़ नहीं देख पाये। अपने शहर में लू बरसती है, सुना है पहाड़ पर ठण्डी हवायें आपका मुंह चूम-चूम लेती हैं अपने शहर में कूड़ा-कर्कट के ढेरों की सड़ांध इत्र-फुलेल की जगह ले चुकी है, वहां पहाड़ों के बदन पर घासीले मैदान और रंग-बिरंगे फूल लहलहाते हैं। अपने शहर में पानी के इंतजार में सार्वजनिक नल के पास खाली बाल्टी लेकर बैठे रहना पड़ता है, वहां पहाड़ों की गोद में ताज़े शफ़ाफ पानी वाले झरने शोर मचाते हुए नाचते चले जाते हैं।

जीत एक सपना रोज़ देखने लगे कि वह एक पहाड़ी घाटी में ताजे शफ़ाफ पानी के झरने के साथ भागे चले जा रहे हैं। पहाड़ की चोटी तक पहुंचते हुए ठण्डी हवा के मदमस्त झोंकों ने उनके बालों को बिखेर दिया। रास्ते में किसी रंगदार फूल पर बैठी हुई तितली ने कहा, "हैलो जीत, हमारे हिलस्टेशम पर कब आये ?"

सपनों को भी अपना रूप बदल लेने की कितनी आदत होती है। पहले जीत संसद में भाषण देने का सपना देखते थे, अब पहाड़ की चोटी पर चढ़ रहे हैं। पहले उन्होंने किसी बहुत बड़ी मेज़ के पीछे बैठ कर घण्टी बजाने के बारे में सोचा था, "हमारी स्टैनो को बुलाओ।" अब रंगदार फूलों को हैलो कहने के बारे में सोचते हैं। उनके नाश्ते के मेज तो तरह-तरह के फलों से नहीं भर सकी, अब झरने का पानी और ठण्डी हवा की गमक उन्हें बुलाती है। जीत ने तय किया कि वह भोर के इस सपने को आधी रात के अन्य डरावने सपनों में तबदील नहीं होने देंगे। वह पहाड़ अवश्य जायेंगे।

अपने दफ्तर से पता किया। एल० टी० सी० मिल सकती थी। यानि पहाड़ तक जाने के लिए सरकार आने जाने का किराया दे रही थी। वहां रहने और खाने का इंतजाम खुद करना होगा। अपने शहर में भी तो रहना और खाना सदा एक समस्या रही है। पहाड़ पर जा कर भी इससे निबट लेंगे। आखिर किसी सपने को तो पूरा होने का हक होना चाहिए, उन्होंने सोचा, और अपना परिवार बांध कर पहाड़ की ओर चल दिये।

पहाड़ के रास्ते पर न जाने कितनी देशी-विदेशी गाड़ियों की भरमार थी इन गाड़ियों से डिस्को संगीत की धुनें उठ रही थीं, और मदिरा की स्वर लहरियों पर बीयर की खाली बोतलें रास्ते में फेंकी जा रही थीं।

पर जिस रेलगाड़ी में जीत परिवार सहित सवार थे, उसमें उन जैसे न जाने कितने लोग अपने दल बल सहित बैठे थे। पैसेंजर गाड़ी एक-एक स्टेशन पर बहुत-बहुत देर रुकी रहती। गाड़ी सिर्फ चार घण्टे लेट चल रही थी। रात जब घिरने लगी तो उन्होंने अपनी पोटली खोल कर खाना निकाला और अपने परिवार में बांट दिया।

खुदा का नाम लेकर जब उनकी गाड़ी पहाड़ के स्टेशन पर पहुंची तो कुलियों ने उनके सैकण्ड क्लास के डिब्बों से सामान उठाने की कोई तत्परता नहीं दिखायी। वे लोग प्रथम श्रेणी और वातानुकूलित ठिब्बों की ओर ही भाग रहे थे।

जीत जब परिवार के साथ स्टेशन के बाहर आये तो ठण्डी हवा बह रही है, इसकी ओर किसी ने ध्यान भी नहीं दिया। वे लोग एक सस्ता होटल तलाश करने के लिए इस पहाड़ी शहर में भटकने लगे। लेकिन सस्ते से सस्ते होटल का एक दिन का किराया भी उनके मंहगाई भत्ते की किस्त के बराबर था। फिर एक कमरे में उनके परिवार के इतने सदस्यों को एक साथ ठहराने के लिए कोई होटल वाला तैयार नहीं था।

"दो कमरे लेने होंगे !" हर काउंटर कलर्क ने उपेक्षा के साथ उन्हें बताया।

पूरे शहर में दो घण्टे भटकने के बाद उन्हें एक धर्मशाला के पुराने बड़े हाल में जगह मिली। इस हाल में फटीचर टाट बिछा दिये गये थे। यहां दो परिवार पहले से ही दखल जमाये थे। जीत भी अपने परिवार के साथ एक कोने में सिमट गये।

"कैसा मौसम है?" पत्नी ने नाक के पास भिनभिनाते हुए मच्छर पर ताली बजाते हुए कहा।

वही उमस और वही घुटन।

यह सीलन की गन्ध कैसी है?

अपने घर में कम से कम अपने कमरे का बूढ़ा पंखा तो चला लेते थे।

उस दिन काफी रात बीत जाने पर जीत को नींद आयी। पर इस रात जीत ने कोई सपना नहीं देखा। न पहाड़ पर रूनकती हुई ठण्डी हवा का सपना और न रंगबिरंगे फूलों का सलाम।

अभी सुबह ठीक से हुई भी नहीं थी, कि पड़ोस में सोये लोगों ने उन्हें उठा दिया।

महाशय, मनीजर बाबू से बाल्टी लेकर घर के लोगों के नहाने धोने का इन्तज़ाम कीजिए, पानी यहां पलक झपकने के लिए आता है।

वे हड़बड़ा कर उठे। बाल्टी लेकर धर्मशाला के नल की ओर गये। वहां यात्रियों के बर्तनों की कतार लगी की और पानी की बारी पर चें चें हो रही थी। जीत तो नाचते हुए झरनों में छींटे उड़ाने आये थे, यहां तो लोग उनके मुहल्ले की तरह पानी को गाली दे रहे थे।

साब, कभी-कभी तो यहां पूरा-पूरा दिन पानी नहीं मिलता। पांच रुपया दो, एक बाल्टी पानी लो।

उधर पाखाना के बाहर भी लम्बी कतार लगी है और बन्द दरवाज़े के बाहर लोटा उठा कर खड़ा आदमी अन्दर बैठे आदमी से जल्दी करने का इसरार कर रहा है।

जीत परेशान धर्मशाला से बाहर आ कर खड़े हो गये। कहां हैं घासीले मैदान और बादलों की अठखेलियां? यह धर्मशाला एक तंग गली में स्थित थी, जिसमें उनकी गली की तरह ही कचरा बिखरा हुआ था और परनाले में से बहते पानी के छींटे शोर के साथ इन पर गिर रहे थे।

जीत ने आंख उठा कर देखा। इस गली से बहुत ऊपर पहाड़ की चोटियां थीं और देवदार के ऊंचे वृक्ष। लेकिन वे तो अभी भी लगते हैं जैसे किसी दूसरे शहर में हों, कि जिस तक पहुंचना उनके बस में नहीं।

यहां इस धर्मशाला के बाहर खड़े होकर नहीं लगता कि वह कभी अपने घर से चले थे। लगता है वह अपने शहर में, अपनी ही गली में खड़े हैं और मकान मालिक उनसे अपने बकाया किराये की मांग कर रहा है। शायद वह किसी भी शहर में चले जायें उनकी गली उनका पीछा करती रहेगी।

धर्मशाला में अपने कमरे में लौटकर गये तो पत्नी कटखनी हो कर बोली—अच्छा पहाड़ पर लाये हो। पाखाने में तो पानी भी नहीं है।

बच्चों ने नकिया कर पत्नी की सुर पर ताल दी 'पापा, क्या भूखा मारोगे? सुबह से कुछ भी तो नही खाया।'

कुछ भी नहीं खाना, तो अपना शहर बुरा है? पहाड़ पर चले आये। पत्नी मिनमिनायी।

हम पहाड़ पर कहां आये? अपने शहर में तो हैं। वह बोल उठे, फिर लज्जित हो गये।

परिवार को लेकर धर्मशाला से निकले। एक हलवाई की दुकान पर बैठ उन्हें जमकर खिलाया पिलाया। पैसे चुकाये तो लगा पहाड़ पर खूब भटक लिया। बिल्कुल वैसा ही तो है जैसे उनके पुराने मकान के पिछवाड़े जुम्मन हलवाई का बेंच।

तो क्यों न वहीं वापस चल कर अपनी बकाया छुट्टी काट ली जाये? जब जुम्मन हलवाई का यह बेंच उनके साथ-साथ ही चलता रहेगा तो फिर उसे पहाड़ पर आकर तलाश करने की भला क्या जरूरत?

जीत अपने परिवार को ले वापस अपने शहर की ओर लौट आये। अपने शहर में कम से कम पहाड़ का सपना देखने का सुख तो था। पहाड़ पर गुजरी इस इकलौती रात में तो आज वह यह सपना भी देख नहीं पाये। पूरी रात मच्छर झटकते ही गुज़र गयी। वह अपने घर पहुंच कर फिर इसी सपने को आवाज़ देंगे, उन्होंने सोचा। सपना भोर से सरक कर आधी रात को आये तो भी क्या? सपना तो सपना ही होता है। ▢

आग्रह—

वार्षिक सदस्यता शुल्क निम्न पते पर 10/- रुपये डिमांड ड्राफ्ट/धनादेश/पोस्टल आर्डर से भेज कर समय भी बचाएं, असुविधा भी।

पता :

एडीशनल सेक्रेटरी, जे० एंड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज जम्मू —180001

—सं०

कहानी

ज़हर

□ विकेश निझावन

पहले बिल्कुल गोल चेहरा था दी का। अब कुछ लम्बा हो गया है। थोड़ा सा तिकोना भी। पहले चेहरे पर भरपूर रौनक रहती थी, अब बिल्कुल मुरझा गया है, पीला पड़ गया है। पहले होंठों पर दबी सी मुस्कान बनी रहती थी, अब ऐसी उदासी और कड़वाहट होती है, लगता है कभी भी एक तेज रुलायी या फिर गुस्से में फूट पड़े गी।

मैंने स्लेट पर दो अंडाकार आकृतियां बनायी थीं। दोनों में एक जैसी आंखें, एक जैसा नाक परन्तु होंठों की रेखा जरा सी बदल दी थी। एक के किनारे जरा से ऊपर को उठे हुए, दूसरे के जरा से नीचे को झुके हुए। एक आकृति पूरी तरह से हंसती हुई लग रही थी, दूसरी पूरी तरह रोती हुई। दी ने देखा तो हंसती हुई बोली थी, 'किसकी सूरतें बनायी हैं ये?'

'ये हंसती हुई सूरत तो तुम्हारी है दी।'

'और ये रोती हुई?' मैंने देखा, दी मेरा जवाब पाने को काफी उत्सुक थीं।

'ये रोती हुई सूरत सुमि की है।'

'हट्ट। पगला कहीं का।' दी ने हल्की सी चपत भी मेरे गाल पर लगा दी थी। दी को मेरी बात कैसी भी लगी परन्तु मुझे अपनी बात सही लग रही थी। और मैंने अपनी बात पर दबाव देते हुए कहा था, 'क्या मैंने गलत कहा दी।'

'बहुत गलत तो नहीं है।' दी शब्दों को चबाती हुई बोली थी।

'ऐसा क्यों है दी?' सुमि का चेहरा इतना उदास और भयंकर-सा क्यों बना रहता है?

'इन्हें संस्कार कहते हैं।'

'क्या मतलब ?'

'मां और बाऊजी में कुछ अन्तर नजर आता है तुम्हें ?'

'उनके चेहरे तो ऐसे नहीं हैं।'

'उनके स्वभाव की छाप हो सकती है सुमि के चेहरे पर।' मुझे मेरे सवाल का जवाब इतने स्पष्ट रूप में मिल जायेगा, मैंने सोचा भी नहीं था।

लेकिन अब वैसी छाप दी के चेहरे पर नजर आने लगी है। मन तो कई बार होता है, दी से कहूं, ये तुम्हारे चेहरे को क्या होता जा रहा है दी ?' लेकिन दी से इस तरह का सवाल करने की हिम्मत मुझ में कहां।

आज दी सच में फूट पड़ी हैं। ज़ार-ज़ार रोने लगी हैं। हिचकियां बंध आयी हैं उनकी। मैं दी को सहलाने लगा हूं। कुछ शब्दों से, कुछ हाथों से। दी के रोने का कारण जानता भी हूं, नहीं भी।

बचपन में जब मैं रोया करता था, दी मेरे हाथ चूमा करती थीं। कहती थीं, हाथों को चूमने से उनमें ताकत आ जाती है।

'लेकिन रो तो आखें रही होती हैं।'

'जब हाथों में पूरी मजबूती हो, वे सब कुछ संभाल लेते हैं। इस पूरे शरीर को भी।'

मैं भी दी के हाथ चूमने लगा था। जरा देर बाद ही दी सच में शान्त हो आयीं।

'तुम रो क्यों रही थीं दी ?'

'अब यह भी बताना पड़ेगा तुझे। इतने दिन से इस घर में जो हो रहा है, वह सब नहीं देख रहा तू ?'

'हां, लेकिन तुम शादी करवा लो न दी।'

'तू भी उनकी कैटेगिरी में शामिल हो गया रे।' मैं समझ गया था, दी का आशय मां और बाऊजी को ले कर है। बहुत दिन से दी मां और बाऊजी की फटकार सुन रही थीं।

'शादी करवाने में हर्ज ही क्या है दी। सभी लोग तो करवाते हैं।'

फटी सी आंखों से दी मेरे चेहरे की ओर देखने लगी। एकाएक चेहरे पर नकली खुशी के भाव लाती बोलीं, 'अच्छा, तू भी यही चाहता है तो मैं शादी करवा लूंगी। लेकिन मेरी एक शर्त है।'

'वो क्या ?'

'मैं उससे शादी नहीं करूंगी, जिससे मां और बाऊजी चाहते हैं।'

'तब ?'

'मेरे सपनों का एक राजकुमार है।'

'सपनों का या सच में।'

'धत्।'

'तुमने मां और बाऊजी से क्यों नहीं कहा ?'

'तू बता सकता है उन्हें ?'

मेरी जुबान रूक गयी। दी की तरफ देख भी नहीं पाया।

'नहीं बता सकता न ? मैं भी नहीं बता सकती।'

'तुम चिन्ता मत करो दी।'

'मतलब ?'

'सुमि आ रही है न। उससे लहलवायेंगे। हम तीनों की मिल कर ताकत बढ़ जायेगी न।'

'तू ठीक कहता है रे। वैसे भी सुमि मेरे मन को खूब समझती है।'

मैं सुमि की छुट्टियों का इंतजार करने लगा था। उस दिन हंसी में दी से कह दिया था, 'दी, अपने सपनों के राजकुमार से मिलवाओ तो।'

'वह तो सपनों में ही आता है।' दी ने मेरी बात को टालने की कोशिश में कहा।

'झूठ मत बोलो दी। मैं सब समझता हुं। कहो, कब मिलवा रही हो ?'

दी हंस दीं, 'ठीक है, सुमि आ जाये न, तब दोनों ही देख लेना।'

बरसात की पहली झड़ी लगी थी, जब सुमि आ गई। कॉलेज बंद हो गये थे। पूरे दो मास के लिये। मैंने ही सुमि से सब कुछ बताया था।

'मां और बाऊजी से नहीं बताया दी ने ?'

'नहीं, हिम्मत ही नहीं बंधी। सुमि, दी का सपना टूटने मत दो। उन्हें उनका राजकुमार दिला दो।

'राजकुमार।' सुमि रात को घर लौटी तो ठहाका मार कर हंस दी, 'तुम्हारा दिमाग तो नहीं खराब हो गया दी। वह तुम्हें राजकुमार लगता है ?'

'ऐसा मत कह सुमि। मैं उसे प्यार करती हूं। वह मुझे अच्छा लगता है।'

'जानबूझ कर मैं तुम्हें इस खाई में नहीं गिरने दूंगी दी। पूरे चार घण्टे बातचीत करके आयी हूं उसके साथ। मुझे तो बिल्कुल आवारा बदमाश लगा है वह।'

दी झट से अपने कमरे में बंद हो गई। घर भर में चुप्पी भर गयी थी। रात को देर से दी कमरे से निकली तो सुमि के सीने पर सर रख कर फफक पड़ीं, 'शायद तू ठीक कहती है। तू मेरा बुरा थोड़े न सोच सकती है। मैं ही बावली हो आयी थी।'

होस्टल की कैद से छूट कर आयी थी सुमि। सुबह घर से निकलती शाम को घर लौटती। पुरानी सहेलियों और शहर की गलियों को देखने के लिये लालायित थी वह।

'आज कहां गयी थी सुमि ?' कभी मैं पूछ बैठता, कभी दी और कभी मां-बाऊजी।

'पूछो मत, बस मजा आ गया आज तो।' सुमि बल खाती हुई आईने के सामने जा बैठती। देर तक चेहरे और बालों को संवारती रहती।

उस रोज दी कह रही थीं, 'सुमि, जानती हूं होस्टल में रह कर खुद को होस्टल के रंग में रंगना भी पड़ता है। लेकिन मत भूलना कि तेरी पढ़ाई का यह अन्तिम वर्ष है। इस बार

बहुत मेहनत करनी चाहिये तेरे को'। मैंने देखा, सुमि मुंह बिचका कर रह गयी थी।

सुमि जब से यहां आयी थी, उसके चेहरे में कुछ परिवर्तन लगा था। मैंने दी से भी कहा तो वह बोली थीं, 'हां, मुझे भी ऐसा लग रहा है। वह पहले से ज़्यादा सुन्दर दीखने लगी है। इस बात की मुझे खुशी तो है लेकिन...'

'लेकिन क्या दी ?'

'मुझे कुछ डर सा लग रहा है।'

'किस बात से ?'

'मैं खुद नहीं जान पा रही।'

दी ने फिलासफी में एम० ए० क्या कर लिया है, हर बात को कुछ उल्टे तरीके से ही सोचने लगी है।

बस पांच दिन रह गये थे सुमि के होस्टल खुलने में। जाने क्यों, एकाएक वह कुछ परेशान सी दीखने लगी। दी को भी इस बात का आभास हो गया था शायद। उस रोज़ सुमि आईने के आगे उदास सी बैठी थी तो दी ने पीछे से जा कर उसके गले में बांहे डालते हुए कहा 'मेरी लाडो पढ़ाई से बोर तो नहीं हो गयी ?'

सुमि कुछ नहीं बोली। चुपचाप वहां से उठ गयी।

दी मुझे बाज़ार ले गयीं। सुमि के लिये ढेर सारी चीज़ें खरीदी थीं। आंवले का मुरब्बा, बादाम, दो नये सूट और एक बड़ा वाला बैग।

'ये सब क्या है दी ?' दी ने सब चीज़ें उसके सामने फैला दीं तो वह लगभग चिल्ला उठी थी।

'कभी सूरत देखी है अपनी। पढ़ाई कर-कर के बाल सफेद कर डाले हैं अपने। सुबह नाश्ते में पांच-सात बादाम और एक टुकड़ा मुरब्बे का जरूर ले लिया कर।' सुमि की इतनी चिन्ता मां और बाऊजी को भी कभी नहीं रही होगी जितनी दी को होती है।

इस बार सुमि जाने लगी तो घर के दरवाजे से ही 'बॉय-बॉय' कर दी उसने। बोली, 'बच्ची तो नहीं हूं अब, जो स्टेशन तक छोड़ने जाओगे। मैं तो गाड़ी पर सवार हो जाऊंगी तुम लोगों को स्टेशन से पच्चीस रुपये में ऑटो करके वापिस आना पड़ेगा।'

दी तो लगभग रात से ही चुप्पी साधे बैठी थीं। जिस डर की बात वे परसों कर रही थीं, आज उसकी रेखाएं दी के चेहरे पर बड़ी साफ-साफ उभर आयी थीं। मां और बाऊजी भी पच्चीस रुपये की बात सुन कर चुप्पी साध बैठे थे।

अगली सुबह उठे तो वे मुझ से बोलीं, 'रात बड़ा अजीब सपना आया मुझे।'

'क्या ?'

'सपने में मैंने नरेन को देखा।'

नरेन ! दी का राजकुमार ! मन के भीतर ही ये शब्द फूटे थे। दी मेरी ओर देखे जा रही है, इस बात का आभास हुआ तो मैं झट से बोला, 'तब ?'

'जानता है वह मेरे को कैसे दिखाई दिये ?'

'कैसे ?'

'बिल्कुल वैसे, जैसे सुमि दिखाई देती थी। गुस्से से भरी और डरावनी सी।'

मन तो हुआ, झट से कह दूं, दी, अब तो तुम वैसी दिखाई देने लगी हो।

तीन रोज बाद सुमि का पत्र आया था। दी के नाम ही था। पहुंच का होगा, बाऊजी ने कहा और उसे बाहर से ही उलटते-पलटते हुए दी के आगे रख कर बाहर निकल गये। गुस्सा तो बहुत आया कि सुमि ने पत्र बाऊजी के नाम क्यों नहीं लिखा ? बाऊजी के नाम होता तो अब तक पत्र मैं ही पढ़ कर उसके पहुंच की खबर सब को सुना देता। पत्र दी के नाम हो और उसे हम खोल डालें ! सर पर मुसीबत मोल लेने वाली बात है।

अब तक दी पत्र उठा कर अपने कमरे में चली गई थीं। अभी वे ऊंचे से कहेंगी, 'सुमि ठीक-ठाक होस्टल पहुंच गई है।' लेकिन दी की कोई आवाज़ नहीं आयी। पूरे पन्द्रह मिनट मैंने इसी सोच में गुज़ार दिये आखिर उनके के कमरे में गया तो वे अब तक पत्र पर नजरें गड़ाये बैठी थीं। कमाल है, अभी तक उन्होंने पत्र पढ़ा नहीं ? अगर पढ़ लिया है तो ऐसी क्या खास बात लिख दी है सुमि ने जिसे वे नजरों से हटा नहीं पा रहीं।

मैं चुप-चाप दी के सामने वाली कुर्सी पर जा कर बैठ गया तो वे मेरी आंखों पर आखें गड़ाती बोलीं, तू क्या सोचता है फिलॉसफी में एम० ए० करके मैं पागल हो गई हूं ?'

दी ये क्या कह गई हैं, मैं अवाक् उन के चेहरे की ओर देखने लगा। सच में, एक बार मैंने मन ही मन सोच लिया था। लेकिन दी से कहा तो नहीं था।

'खैर जाने दे।' एक व्यंग्यात्मक मुस्कान से दी के होंठ फैले, 'सुमि का पत्र आया है। पूछेगा नहीं कि क्या लिखा है ?'

'वही तो पूछने आया था।'

'फिर पूछा क्यों नहीं ?'

कैसे कहता कि मुझे दी का चेहरा बहुत अजीब लगने लगा है। सुमि के चेहरे की तरह। वैसा भयंकर सा। दी का चेहरा देख तो कंठ सूखने लगता है। मेरी चुप्पी देख वही बोलीं, 'जानती हूं क्यों नहीं पूछ पाये।'

मैं उनके चेहरे की ओर देखने लगा था।

'मेरा चेहरा देख कर तुझे डर लगने लगा है न ?'

एकाएक मैं जड़ हो आया हूं। मेरे भीतर के शब्द दी के होंठों पर। मैं खामोश हूं। मेरे भीतर का जैसे सब जड़ होता जा रहा है। जरा रुक कर बोलीं, "उस रोज सुमि को देख कर मुझे भी डर लगने लगा था न ? जानता है, मुझे उसके चेहरे पर एक जहर फैला नज़र आया था। और मुझे लग रहा है, वह जहर आज मेरे चेहरे पर उतर आया है।... मेरी बात को तुम नहीं समझ पा रहे हो-- एक रोज अवश्य समझ जाओगे।' दी अपनी बात

को तोड़ती हुई बोलीं, 'जानता है सुमि ने क्या लिखा है ? वह शिमला की हसीन पहाड़ियों के बीच अपने सपनों के राजकुमार के साथ आंख-मिचौली खेल रही है ।'

एक खासा विस्फोट था यह मेरे लिये। एक झटके से मैंने दी के हाथों से पत्र छीन लिया , पत्र पढ़ लेने के बाद मेरी मुट्ठियां भिंच आयी थीं, 'ऐसा नहीं हो सकता दी ।'

'ऐसा हो चुका है रे। जिसे मैंने पलकों से चुन कर अपने सपनों का राजकुमार बनाया था, सुमि ने उसे एक झटके से दबोच अपना देवता बना लिया। मेरे लिये सुमि ने मेरे सपनों के राजकुमार को गाली दी थी, उसके लिये वही व्यक्ति आज देवता हो गया। मेरी जिन्दगी का एक बहुत बड़ा हिस्सा छीन लिया उसने ।' दी का चेहरा पहले से भी ज्यादा स्याह हो आया था ।

'तुम परेशान न होओ दी ।'

'कैसे न होऊं रे। अपनों ही के हाथों इतनी ज़िल्लत। एक बात पूछूं रे ?'

अब और क्या रह गया है, जिसे वे पूछने चली हैं। इतने बड़े विस्फोट के बाद कुछ और बचा है क्या ! बस, उनके चेहरे की ओर देखने भर लगा था ।

'याद है बचपन में तू दो आकृतियां बनाया करता था। एक आकृति तू मेरे चेहरे से मिलाया करता था और दूसरी सुमि के चेहरे से ?'

'हां ।'

'आज मेरा चेहरा दूसरी आकृति में परिवर्तित हो गया है न ?' बिल्कुल नि. शब्द हूं मैं।

'ये सुमि के चेहरे का ज़हर है रे, जो मेरे चेहरे पर उतर आया है। एक बात और बताऊं, सुमि का चेहरा इस वक्त बिल्कुल वैसा होगा जैसे पहले मेरा चेहरा होता था।' दी मुस्करायी हैं लेकिन साथ ही उनकी आंखों से एक आंसू टपका है, फिर दूसरा, फिर तीसरा। वे ज़ार-ज़ार रोने लगी हैं। हिचकियां बंध आयी हैं दी की।

'ये ज़हर उतर नहीं सकता दी ?'

'कैसे उतर सकता है। जब तक सुमि का चेहरा मेरी आंखों के आगे बना रहेगा, ये ज़हर इसी तरह रहेगा। ये ज़हर तो उसी दिन उतर सकता है, जिस रोज़ मैं सुमि को भूल जाऊं। लेकिन मैं सुमि को कैसे भूल सकती हूं।'

मैंने दी का सर अपनी गोद में ले लिया है. 'ठीक कहती हो दी, तुम उसे कैसे भूल सकती हो। आदमी की अच्छाई मस्तिष्क से निकल जाती है, बुराई कहां निकलती है।'

'नहीं रे, ऐसा मत कह। मैं इस बात से खुश भी हूं कि आज सुमि का चेहरा तेरी बनायी दूसरी आकृति जैसा होगा। तू भी ऐसा चाहा करता था। मैं भी ऐसा चाहती थी। वह है तो अपनी बहन ही न। मैं कोशिश करूंगी उसे भूलने की। तभी मेरा यह ज़हर उतर पायेगा। लेकिन मैं उसे भूलना भी नहीं चाहती—नहीं भूलना चाहती।'

और···दी ने अपना चेहरा पूरी तरह से मेरी गोद में छिपा लिया है। ▢

कहानी

पांव पटकन

□ अशोक गुप्ता

ऐसा हमेशा तो नहीं होता था, लेकिन उस दिन इस गली से गुज़रते समय उसे लगा कि वह ख़ुद से अजनबी होता जा रहा है। अपनी सामने की जेबों वाली पैण्ट में उसने अपने हाथ कुछ और गहरे घुसेड़े और तेजी से कदम बढ़ाते चलने लगा। दरअसल उसकी शक्ल सूरत, रख-रखाव और बात करने का अंदाज उसे, उसकी उस असलियत से बेहद फर्क साबित करते थे जो उसकी औक़ात का सही नक्शा थी। भला कहां सलीकेदार कपड़ों में गोरा-चिट्टा जवान जिसकी ज़बान पर हिन्दी, उर्दू और थोड़ी बहुत अंग्रेज़ी के भी शब्द ज़रा तराश कर उतारे गये थे और कहां डायमंड ट्रेडर्स का अदना सा मुनीम, जिसकी महीने भर की कारगुजारी केवल सेठ की दुकान-इमारतों के किराया तय करने, वसूलने में चुक जाती थी।

किराया!

याद आते ही उसने जेब से हाथ निकाल कर अपने भीतर लड़ते हुए उन दोनों पात्रों को अलग किया जिनको वह अलग-अलग एक साथ प्यार करता था क्योंकि वह दोनों ही उसके अपने व्यक्तित्व का जरूरी हिस्सा थे। उसने जेब में सिगरेट टटोली और याद किया कि पहले उसे बाईस नंबर का वह मकान घेरना है जिसकी सपाट खड़ी सीढ़ियां देखकर उसे हर बार नये सिरे से पसीना आ जाता है और जीने से लगी रस्सी, जो मैल और सीलन से काली हो गई है। उसने सिगरेट पीने का अपना इरादा बदल दिया क्योंकि ऊपर मिसेज तिरखा का झुर्रियों से भरा चेहरा, जो सिगरेट के धुएं में कुछ और टेढ़ा हो जाता था, देख पाना उसके बस की बात नहीं थी।

वैसे मिसेज तिरखा इतनी बदसूरत या भयानक नहीं हैं, लेकिन जब उनके पारदर्शी

चेहरे पर उनके जंग में मारे गये जवान दामाद का मूंछों भरा चेहरा, या उन्हें उनकी बेटी के सामने पति द्वारा दी गई मां बहन की गालियां उभरती हैं तो उनका चेहरा मिसेज तिरखा के व्यक्तित्व की तरह अजीब दुर्गन्ध युक्त, लिजलिजा और बेलौस हो जाता है। ऐसे आकार हीन मांस पिण्ड जैसे चेहरे को भला कौन देखते रहना चाहेगा? उसने सिगरेट सुलगाने जैसी गलती नहीं की क्योंकि वह हर उस पुल को तोड़ता हुआ सिर्फ किराये वाली बात लेकर बढ़ना चाहता था, जो मिसेज तिरखा को उनके चेन स्मोकर दामाद या शराबी पति से जोड़े।

दरवाजा खटखटाने की जरूरत उसे नहीं पड़ी क्योंकि मिसेज तिरखा बाहर ही बरामदे में बैठी थीं। उनके हाथ सामने खुली किताब पर थे जरूर लेकिन उनका चेहरा आसमान में टंगा हुआ सा था और सामने थी खुले में गरम कपड़ों को धूप दिखाती, अपने और मां के प्रति निश्चेष्ट बुझी सी कंचना। वह अंदर घुसा तो मिसेज तिरखा के मोटे शीशे वाले चश्मे के भीतर से कुछ भयानक सी दिखती आंखों से घबरा गया और उसे लगा कि जिस हमले से निपटने की वह मानसिक तैयारी करता आ रहा वह अब शुरू ही होने वाला है। बालों पर हाथ फेर कर उसने खुद को कुछ और आश्वस्त किया और पीछे लौट कर कॉल बेल बजा दी। उखड़े हुए से बोर्ड पर झूलती जंग लगी टोपी वाली घंटी की झनझनाहट के साथ जब मिसेज तिरखा के हाथ की किताब जमीन पर आ गई और वह चौंक कर फिर इस दुनिया में लौटीं तो उसे लगा कि वह भी भीतर से उतना ही झनझना उठा है। वह आंगन में आकर चुपचाप बरामदे में खंभे के पास खड़ा हो गया और आण्टी के बोलने की प्रतीक्षा करने लगा। कंचना भीतर चली गई। पैवंद लगे फौजी कंबलों के बीच, अपने और अपनी मां के पुराने बदरंग शाल छोड़कर, जिनमें कहीं-कहीं छेद भी हो गये थे। मिसेज तिरखा ने उसे बैठाया कुर्सी खींचकर और चेहरे पर मुस्कुराहट बिखेर दी। वह इस ओर चार पांच महीने बाद आया था क्योंकि इधर का समय उसने सेठ के सालाना हिसाब बनाने में बिताया था। इतने समय बाद फिर यहां आने पर उसे महसूस हुआ था जैसे जहाज का पंछी फिर जहाज पर लौट आया हो। 'साला सेठ...' गली में घुसते ही बुदबुदाया था वह। लेकिन यहां आण्टी के चेहरे पर अपने आने से ताजगी देखकर उसे लगा कि अपने भीतर हमेशा एक लड़ाई देखते रहने वाली निगाह में, कहीं न कहीं कोई गलती जरूर है, फिर भी उसने खुद को उस को उस पल भी बदलने नहीं दिया क्योंकि उसे लगा कि निरंतर युद्धरत रहना उसे अच्छा लगता है।

□

कंचना जब चाय लेकर आई तो तो उसके हाथ में एक लंबा सरकारी लिफाफा था जो उसके लिए नया नहीं था और उसमें रखे कंचना के फैमिली पेंशन के रुपये भी। एक झलक भर देखने से वह जान गया कि कंचना की आंखें सूजी हुई हैं और आंटी की आंखें उतनी ही ठंडी। मां और बेटी के बीच एक लंबा और एक दूसरे को छलनी करते रहने जैसा दृष्टि-शिल्प उसकी निगाह में कुछ इतना उतर गया कि वह लिफाफे के रुपयों और अपने हाथ के बीच की दूरी में डूबने लगा। एक खामोश इबारत के बीच उसने रह-रह कर कंचना और आंटी का

एक दूसरे की ओर ताकना देखा तो उसे लगा कि इस घमासान काटने वाली प्रक्रिया को उसके आने ने और तेज कर दिया है।

आंटी की आंखों से दो बूंद आंसू टपकने के पूर्व जब उनके शब्द सुने तो पता चला कि मिस्टर तिरखा अभी परसों करीब दो घंटे के लिये आये थे और आंटी को उनके सगे चचेरे दिबंगत भाई के साथ जोड़ते-जोड़ते तोड़ गये थे। आंटी ने मेजपोश के नीचे से अपने चश्मे की टूटी हुई मुड़ी-तुड़ी कमानी निकाल कर जब उसके सामने बिछा दी तो उसे लगा कि अब उसे भी उस कमानी के समांतर बरबस बिछ जाना है आण्टी के प्रलाप में डूबने के लिये। मिस्टर तिरखा की पेंशन का एक भी पैसा घर में आना बंद हो चुका है यह बताते हुए भी आंटी की आवाज उतनी नहीं कांपी थी। जितना कंपन वे तब दे गईं थीं जो तिरखा द्वारा भूल गये उनके ब्रीफकेस को उन्होंने उसके सामने उलट दिया था। पचपन साल के शराब से चुसे आदमी के सामान में थीं नंगी औरतों की तस्वीरें, किताबों और शिलाजीत किस्म की गोलियों की शीशी।

तिरखा की मेज पर फैली शख्सियत के बीच जो चीज उसे बेतरह कचोट रही थी, वह थी कंचना की बेचैनी। कंचना, जो तिरखा को पिता के फ्रेम में स्वीकार न कर पाने के बावजूद, उसे यूं सरेआम नंगा किया जाना झेल नहीं पा रही थी। लेकिन, उसे तो झेलना था सब कुछ और यह भी कि आंटी बेसाख्ता अभिभूत हो उठी थीं और उठा लाईं थीं अपनी पिटारी जिसमें उन्होंने ब्रजेश के कंचना के नाम लिखे खत संजो कर रखे हुए थे। वह खत जो कंचना को इतना काटते थे कि वह उन्हें देखते ही फूट-फूट पड़ती थी, आंटी को सुकून देते थे। कंचना ने देखा और न सह पाते हुए छटपटा कर उठी और चली गई।

आंटी अब उन्हीं खतों को पढ़ कर उसे सुना रही थीं, उस ब्रजेश के खत जिसे उन्होंने खो दिया था, उस कंचना के नाम, जो अपने आसपास, खुद से जूझती हुई अपने आप से भी अजनबी हो गई थी।

उसने बगल वाले कमरे में, कंचना का पैर पटक कर चलना सुना और बिना चेहरा देखे यह अंदाजा लगा लिया कि कंचना की इस स्थिति के पीछे ब्रजेश की चीखती हुई याद के अतिरिक्त एक आक्रोश भी है जो मां और एक पराये आदमी के सामने खुले खतों के कारण उथला सा पड़ रहा है। उसने मिसेज तिरखा का चेहरा भी देखा जो ब्रजेश की याद की दस्तक के अलावा कुछ वैसा भी हो रहा था जैसा एक औरत का किसी दूसरी औरत के प्रेम पत्र चोरी से पढ़ते समय हो जाता है और प्रेम में वह आदमी, कंचना की छटपटाहट और उसकी मां के आमूल छाये तनाव से जुड़ पाने के बावजूद, यह महसूस कर रहा था कि उसके सामने लिफाफे में रखे रुपयों और उसकी उंगलियों का फासला कुछ बढ़ गया है।

मिसेज तिरखा का ध्यान तो तब टूटा जब उसने कप में पड़ी ठंडी चाय का लम्बा आवाज भरा उकताया हुआ घूंट सुड़पा और हाथ से मुंह पोंछने लगा। एक बलात् समापन जैसी हरकत के बीच आंटी ने एक ठंडी आह भरी। लिफाफे से सौ रुपये का नोट निकाला।

अपना एक तरफ डोरी बंधा चश्मा सम्हाला और मेज पर बिखरा सारा फैलाव इस तरह से समेटती भीतर चली गईं जैसे जादूगर खेल खतम करने के बाद करता है।

वह जड़वत् नोट लिये खड़ा रहा लेकिन आंटी बाहर नहीं आईं। कंचना बाहर निकली तो उसके चेहरे पर आक्रोश उतार पाने की लड़ाई और थकान के चिन्ह साफ उजागर थे। बरामदे से आंगन होते हुए सीढ़ियों तक का रास्ता उसने और कंचना ने साथ तय किया। जीने पर आकर जब वह खड़ी हुई तो उसने देखा कि कंचना की आंखें जैसे जल रही थीं। उसे कंचना का आना और इस अस्त-व्यस्त लेकिन मजबूती से खड़े हो जाना एक नये आतंक से भर गया।

दो सीढ़ी उतर लेने के बाद भी वह कंचना के चेहरे से निगाह हटा नहीं पाया। वह एक सीढ़ी उतरा तो कंचना भी उतर आई। वह रुका और उसके रुकते कंचना का बर्फ सा ठंडा हाथ उसके कंधे पर टिक गया। एक पल में कंचना अपने तनाव, आक्रोश और अंर्तयुद्ध से हटकर असहाय सी खड़ी थी, उसे लगा कि कंचना अपने मंथन से निकल कर कहने लायक कुछ शब्द खोज रही है। कंचना के कुछ कहने के पहले ही वह खुद को कुछ झेलने की स्थिति के लिये तैयार करने लगा।

एक लंबी तैयारी के बाद कंचना बोल पाई, 'मां की बात का बुरा मत मानना तुम... वह तो हर अजनबी पराए आदमी के सामने यूं ही बिखर जाती है किसके घर में हादसे नहीं होते, तो क्या...'

बात कहते-कहते सहसा रुकी कंचना और उसने भीतर बाहर की तमाम अस -व्यस्तता को कस डाला और उस अजनबी पराए आदमी के कंधे से हाथ ऐसे खींचा जैसे धोखे से किसी चीज को गिरफ़्त से छोड़ दिया गया हो।

उसे लगा कि भीतर की सिसकियों भरी चीख रोकने के प्रयास में कंचना नये सिरे से टूट गई है।

देखते देखते कंचना एक बदली हुई शख्सियत लेकर उसके सामने खड़ी थी।

'अगले महीने से किराया हम मनीआर्डर से भेजा करेंगे, मकान मालिक को बता देना...' और तेजी से पलटकर पटकते पैरों की आवाज बिखेरती ऊपर चली गई।

किराया वसूल लेने के बाद उसे भी आगे चलना ही था, लेकिन वह चलते-चलते अपने भीतर सोचता भी रहा, कि यह पटकते पैरों की आवाज कभी आंटी तक भी पहुंचेगी क्या? या सचमुच अपने दुख के बाहर उनकी कोई दुनिया है ही नहीं... □

उर्दू कहानी

राजी

□ कविरत्न

हमारे दफ़्तर में नई रिसेप्निस्ट की आमद, जिसका नाम मिस राजी था, काफ़ी हंगामा खेज़ रही। दफ़्तर में उसका आना एक ऐसी अहम फाईल की तरह था जिसमें तनख़्वाह की तरक्की के आडर्ज़ हों और जिसे हर कर्लक और बाबू अपनी भूखी आंखों से खूब उलट-पलट कर देखे कि उनके हिस्से क्या-क्या आया ?

मैंने राजी को देखा और देखता ही रह गया। यकायक ऐसे लगा जैसे दफ़्तर के इस वीराने में चुपके से बहार आ गई हो।

दफ़्तर के पारखी आदमियों ने इज़हारे राय किया।

'बड़े बाबू की पैनी निगाह की दाद दो, क्या माल चुना है।'

'नीचे ऊपर, दायें बायें। हर सिम्त से मुकम्मल।'

'अरे टाइप क्या करती है पियानो बजाती है, पियानो।'

'गोल्ड-फिश है, सुनहरी मछली ! जाने किसके जाल में फंसेगी ?'

लिहाजा, बहुत से जाल फैंके गये। मगर यह मछलो यूं फंसने वाली नहीं थी। मजबूरन खाली जाल वापिस खेंचने पड़े।

राजी में खास अजीबो-गरीब कशिश या जुम्बिश थी जो आखिर मुझे उसके पास खींच ले गई। मैंने उससे अपना तारूफ़ कराया और रस्म निभाई 'आपसे मिल कर बड़ी खुशी हुई'।

राजी इन्तिहा दर्जे की मुंह फट थी झट से बोली—

'मिस्टर वर्मा मुझे फ़िलहाल कोई खास खुशी तो नहीं हुई आप से मिल कर' और इसी के साथ उसने ज़ोर का कहकहा लगाया।

क्योंकि मैं आपको अच्छी तरह नहीं जानती फिर भी मुझे उम्मीद है कि आने वाले दिनों में हम अच्छे दोस्त बन पायेंगे।'

सारे दफ़्तर में पाल ही एक ऐसा शख़्स था जो इस सनसनीखेज़ आमद को नज़र अंदाज किये हुए था। जब मैंने उससे राजी की तारीफ के पुल बांधे तो पाल ने उन्हें गिरा दिया।

'कमबख्त का जिस्म तो ख़ूबसूरत है पर दिल नहीं। चालू माल है। दफ़्तर में हगामे खड़े करेगी। मैंने दुनिया देखी है मेरे यार, तुम तो नौसिखिये हो।'

राजी ने गुल खिलाने शुरू किये। वह काम कम करती थी और चोंचले ज्यादा। उसे दफ्तर से कोई दिलचस्पी नहीं थी। कई बार दफ़्तर से बिना दरख़्वास्त दिये दिन-दिन भर गायब रहती। गुलामी और सलामी उसके बस का रोग नहीं था। जी हज़ूरी की वो कायल नहीं थी। खूब ठाठ-बाठ और अकड़ से आती जाती थी। जाने कहां-कहां के लोग उससे मिलने चले आते थे। उसके मुलाकातियों का तांता लगा रहता। मुकर्रंरा वक्त के बाद वह दफ़्तर में एक मिनिट भी नहीं ठहरती थी। फुर्र से उड़ जाती और जाने कहां कहां घूमती फिरती थी। लेकिन हमारे दफ़्तर का जासूस महकमा भी काफी होशियार था।

अहम ख़बरें बाक़ायदा मौसूल होती रहतीं।

'कल राजी ओडियन में पिक्चर देखने गयी थी एक हट्टा-कट्टा खूबसूरत जवान भी साथ था'.

'साली का 'कोई' होगा।'

'कल देखता क्या हूं कि गेलार्ड के सामने एक आलीशान कार रुकी और उसमें राजी बाहर उतरी साथ में कोई अंगरेज़ था। क्या कीमती, साड़ी पहने हुए थी'

'आज कल तो बड़े-बड़े चक्करों में हैं।'

और ये सारी ख़बरें और उन पर दिये गये तासरात सही थे। राजी की हर शाम और रात रंगीन थी।

सारा दफ़्तर उसे हकीर नज़रों से देखता था और एक वह थी कि सर उठा कर चलती थी। मुस्क़ुरा कर चलती थी। दफ़्तर वाले उसकी पीठ पीछे गालियां देते थे। पर राजी की हल्की सी जबान को लकवा मार जाता था। उसकी मुस्कुराहट के साथ ही उनकी पूरी बत्तीसी बाहर झांकने लगती। यह कहना गलत होगा कि वह मुस्कुराती थी। वह मुस्कुराती नहीं, हंसती थी। इससे यह कहना सही होगा कि वह कहकहे लगाती थी। ज़ोर-जोर से। मैंने कभी उसकी पेशानी पर शिकन नहीं देखी, चेहरे पर कभी उदासी नहीं पाई। वह सिर्फ हंसना-हंसाना जानती थी। लतीफे कहने और सुनने का उसे बेहद शौक था। चुस्त-फिकरेबाज़ी और हाज़िर जवाबी की वह माहिर और कायल थी।

राजी के साथ मेरी वाक़फ़ियत दोस्ती की शक्ल इख्तियार कर रही थी। मैंने इसके लिए कोई खास कोशिश नहीं की थी। असल में इसका सेहरा राजी के सर पर था। वह खुद बखुद मुझ से खुलती चली गयी। और न चाहते हुए भी मैं इससे खुश था और परेशान भी। परेशान इसलिए कि राजी की दोस्ती का दूसरा नाम बदनामी था। मैं राजी से न मुहब्बत कर सकता था न करना ही चाहता था। जाने क्यों, मैं समझ गया था कि राजी और किसी की नहीं। फिर भी अनजाने में, मैं उसके बारे में सोचता और हसीं ख्वाब बुनता। राजी की आंखें मुझे झील की तरह लगतीं जिनमें मैं डूब जाना चाहता।

राजी की आंखें भी अजीब तरह की खूबसूरत थीं। बिन बोले बोलती थी हर उस जज़्बे का इजहार करने में माहिर थी जिसके लिए अब तक इंसान ठीक-ठीक लफ्ज़ नहीं ढूंढ पाया। मगर उनमें एक अजीब सी तलाश झांकती रहती थी। जाने क्या ढूंढती रहती थीं वो आंखें। राजी जब आपको देखती तो यह एहसास होता था कि उसकी नज़र आपके जिस्म से आर-पार हो गई है। इसलिए जब वह मेरी आंखों में झांकती तो मैं झेंप सा जाता। ऐसा लगता जैसे मैं एकदम नंगा हो गया हूं।

कहते हैं आंखे दिल का आईना हैं। मगर मुझे यकीन नहीं, क्योंकि राजी की आंखें किसी को दिल की गहराईयों में नहीं उतरने देती थीं। उसके दिल में गलाज़त व ज़लालत के ढेर थे या उसका दिल पवित्र या गंगा-जल की तरह था ? कुछ जान नहीं पड़ता, कुछ समझ नहीं आता था। राज़ी कहां की थी ? उसका इस दुनिया में कौन-कौन था ? मैं आज तक नहीं जान सका। उसका पूरा नाम तक किसी को मालूम नहीं था। दरअसल वह अपने बारे में किसी को कुछ नहीं बताती थी। वह एक अजीब सी खूबसूरत पहेली थी।

पाल ने आज शाम पीने का प्रोग्राम बनाया था। दौरे जाम शुरू होने के बाद मैं शिद्दत से महसूस करने लगा कि राजी का तज़करा छेड़ा जाये। राजी से अपनी दोस्ती का इजहार मैंने पाल से अभी तक नहीं किया था। क्योंकि पाल अजीब किस्म का सनकी था। औरत ज़ात से उसे सख्त नफ़रत थी। और राजी को तो वह सरेआम गालियां देत था। राजी उसके लिए बेशर्मी की सबसे बड़ी मिसाल थी। खैर, फिर भी मैंने पत्ता फेंक ही दिया।

'राजी के बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है पाल ?' पाल ने अपनी खास कोटेशन दोहराई 'फ्राइयलटी दाई नेम इज़ वोमैन।' पाल से बहस करना फिज़ूल है। वह सिर्फ अपनी हांकना जानता है। आपकी कभी नहीं सुनेगा। आप जीत कभी नहीं सकते, सिर्फ लड़ सकते हैं। और बहस में वह हाथापाई की हद तक भी उतर सकता है। इस खानकारी के बावजूद मैं आज उससे बहस की हिमाकत कर ही बैठा।

'यार मैं समझता हूं वह गुमराह लड़की है, (आई मीन शी इज़ ए स्पोयल्ट चाइल्ड) दरअसल वह इतनी बुरी नहीं, जितना हम उसे समझते हैं।' पाल तैश में आ गया। 'तुम समझते हो कि तुम समझदार हो। निहायत नासमझ हो। राजी के पास कुछ नहीं है। सिर्फ खूबसूरत जिस्म है, औरत का वो पासपोर्ट जो उसे कहीं भी ले जा सकता है, ऐश करवा

है · और प्यार मुहब्बत सब बक़वास है, एक दम फ्राड। हवस को पूरा करने से पहले एक खूबसूरत मुक्कदस नाम लेना है जैसे सूली पर चढ़ने से पहले रामनाम। प्यार और रामनाम। सब बक़वास। राजी वाहियात औरत है, कमीनी औरत है।' और वह रुक गया · उसने मेरी ओर शक और सवालिया नजरों से देखा। फिर बोला 'मेरे यार, औरत के चक्कर में जो आया, वही चकरा गया, मारा गया। और तुम तो निहायत बुद्धू हो, नहीं चुगद हो।' बकौल पाल चुगद अखिरी और सबसे बड़ी गाली है। उसके मुताबिक सब गालियों में यही सांइटिफिक गाली है। और जब एक बार पाल से चुगद की डेफीनेशन पूछी गयी, तो उसने ढेर सी गालियां सुना डालीं और कहा कि इन सब गालियों की इसमें बू आती है। और··· और···आखिर उसने तसलीम कर लिया कि इस गाली को ठीक तरह से बयान नहीं किया जा सकता, यह तो महसूस करने की चीज है'

पाल की हर बात अजीब थी, हर राय जुदा। उसके अपने विम्ज थे, अपनी सनक़ थी। मैं उसकी बुराईयों ओर खूबियों से अच्छी तरह वाकिफ था। वह बेहद कड़ा दोस्त है जो मौक़ा पड़ने पर माल तो क्या जान तक दोस्ती के नाम पर दे सकता है। इसका मुझे ज़ाती तजरुबा है। मगर उसकी गुजश्ता जिन्दगी के बारे में मैं इतना ही जान पाया हूं कि उसका पूरा नाम राजेन्द्रपाल है। वह धर्मशाला का रहने वाला है। पांच साल पहले दिल्ली आया था और फिर कभी वापिस नहीं गया। उसको लड़की ने धोखा दिया और कहीं और शादी कर ली। बस उस दिन से उसने 'धर्मशाला' हमेशा के लिये छोड़ दिया फिर कभी वहां नहीं गया और बस। पाल को अपने बारे में बातें करना क़तई पसंद नहीं था। वह दुनिया, लोगों की बातें करता और खूब गालियां देता।

बोतल खाली हो चुकी थी। पाल बड़बड़ा रहा था। फ्रायलटी दाई नेम इज़ वोमेन — फ्रायलटी···और बड़बड़ाता हुआ वहीं कुर्सी पर सो गया।

दुनिया में हर चीज के होने में देर हो सकती है पर बदनामी होते देर नहीं लगती। चंद महीनों मे ही राजी हमारे दफ़्तर में क्या दिल्ली भर में बदनाम हो कर रह गई।

अच्छाई और बुराई की पेचीदगी पर तकरीर करना मेरी फ़ितरत है और शायद हर आदमी इसका शिकार है। लिहाज़ा मैंने राजी को एक दिन सुबह-सुबह ही अच्छी राहें अपनाने और नेकनाम बनने के मौज़ू पर एक तकरीर झाड़ दी। मगर असर उल्टा। 'तुम कौन होते हो मुझे ये सब कहने वाले। मैं किसी को हक़ नहीं देती कि वो मेरे ज़ाती मामलात में दख़ल दे, समझे मिस्टर!' और मिस्टर समझ गये। पाल ने मुझे पहले ही आगाह किया था मगर मैं ही···वह ठीक कहता था मैं चु···

बाकी दिन की छुट्टी ले कर मैं घर चला आया सारी दोपहर कोफ़्त में कटी शाम को पाल भी नहीं आया। जी बहलाने की गरज़ से रात को पिक्चर देखने चला गया। रात साढ़े बाहर बजे पिक्चर खत्म हुई।

हाल से बाहर निकला ही था कि एक जाना-पहचाना कहकहा सुनाई पड़ा। मैं बोखला सा गया। सामने राजी खड़ी थी।

'अरे वर्मा तुम भी पिक्चर देख रहे थे ?'

'क्या मैं पिक्चर नहीं देख सकता ?'

'अरे तुम अब तक नाराज़ हो ? ठहरो, मैं एक मिनट में आई और चली गयी । दूर खड़े दो-तीन मुशटंडों से कुछ खुसर-फुसर किया और वो नाउम्मीदी वाले चेहरे लिए चलते बने ।

'चलो वर्मा मुझे घर छोड़ आओ । बाहर से टैक्सी ले लेते हैं । प्लीज ।'

'प्लीज़' का इस्तेमाल राजी बहुत कम करती थी और जब कभी करती तो उसके चेहरे पर बच्चों की सी सादगी ओर मासूमियत सी आ जाती और उसकी आंखें घनी पलकों की चिलमन से कुछ ऐसे भोलेपन से झांकती कि इंकार करना इंसान के बस की बात नहीं रहती। रास्ते में राजी ने मुझ से कहा 'मेरी बातों का बुरा मत मनाया करो । मैं तो यूं ही बक जाती हूं कभी-कभी । किसी से मुहब्बत करते हो ?'

मैं घबरा गया । मेरे मुंह से एक दम सचाई फूट पड़ी ।

'मैं तो शादीशुदा हूं ।'

वह ज़ोर से हंसी ।

'शादी के बाद मुहब्बत का जज्बा खत्म हो जाता है ।'

खैर फिर भी गलती हो जाये, तो मुझ से राय ज़रूर लेना — मुफ्त दूंगी । तुम क्या जानो मैं मुहब्बत पर एक बड़ा ग्रंथ लिख सकती हूं । अरे मास्टरी की है । खैर तुम मत पड़ना इस चक्कर में ।' और वे कुछ रुकी ओर फिर बोली ।

'इसमें कुछ नहीं मिलेगा । तुम में एक मासूम सादगी है । मेरे बेहतरीन दोस्त हो । दफ़्तर में और कौन—ये तुम्हारे पाल भी अजीब हैं । जाने उसने जिन्दगी में क्या खो दिया है । वह इतना बुरा नहीं जितना बनने की कोशिश करता रहता है । यह अच्छा और बुरा बनने की लत भी अजीब चीज है । बहरहाल मुझे उससे हमदर्दी है । खैर, छोड़ो तुम्हें एक नया लतीफा सुनाऊं, एक सरदार जी थे···और उसके बाद वही कहकहे और फिर उसका घर आ गया और अलविदा कहकर वह चली गयी और मैं सोचता रहा । बेकार ही मैंने दफ़्तर से छुट्टी ली, फिजूल ही दिन भर कोफ़्त उठाई । दूसरे दिन मैंने पाल से, राजी ने जो बातें सिर्फ उसके बारे में कहीं थी, सुनाईं । वह कुछ बौखला सा गया पर झट अपने-आप में आया । 'अगर मैंने कुछ खोया है तो उसके हरामी बाप का क्या ? वह कौन होती है हमदर्दी जताने वाली । थूकता हूं उसकी हमदर्दी पर । देखना आखिर एक दिन कोठे पर जा बैठेगी और तब मैं जाऊंगा । हमदर्दी दिखाने साली को । ···चुगद कहीं की !' पाल की गालियों का सिलसिला जारी ही था कि हादसा हुआ । बॉस ने अपने कमरे में बुला कर राजी को खूब झाड़ पिलाई और राजी थी कि आगे बोलती ही जाती सारा दफ़्तर चौकन्ना था । आखिर राजी बाहर आई और अपने कमरे में चली गई । कुछ अरसा बाद जब मैं उसके पास गया और डयूट का सबब जानना चाहा तो बोली 'तुम दफ़्तर के लिए बाइसे बदनामी हो ! तुम अपना काम ठीक तरह से नहीं करतीं, हंसती रहती हो । अब कल कहे गा तुम रोटी खाती हो, सांस लेती हो ।'

'पर झगड़ा किस बात पर शुरू हुआ ?'

'दरअसल झगड़ा कोई नहीं वर्मा। वह समझता है मैं उसका मतलब नहीं समझती। बेवकूफ है। मैं सब समझती हूं और यही तो मुसीबत है। मैं आदमी की रग-रग पहचान जाती हूं और यह बात नहीं कि मैं बड़ी सती-सावित्री हूं। पर मुझे इस शख्स की शक्ल से नफ़रत है, फ़ितरत से नफ़रत है। मुझे पैसों और अफसरी का रौब दिखाता है। ठीक है मुझे नौकरी ज़रूर चाहिए और मैं पैसों पर जान देती हूं। पर पैसों से भी ज्यादा मैं अपने दिल पर जान देती हूं। अगर यह नहीं मानता तो मैं भी कुछ नहीं जानती। इस की बात मैंने कभी नहीं टाली। मेरा यह ज़िद्दी मासूम प्यारा इकलौता बच्चा है। इसकी जिद ने इसे और मुझे क्या नहीं दिखाया पर फिर भी मैं ''लानत भेजो। मैं जुनूं और गुस्से में जाने क्या बक गई''बड़ा आया बॉस कमबख्त मेरी एक मुस्कान की मार नहीं और धौंस कैसे दिखाता है।' राजी ने कहकहा लगाया। मेरे हाथ उस दिन छुट्टी की दरख्वास्त थमाई और चली गयी।

पिछले दो दिन से राजी दफ़्तर नहीं आई थी। सुना बीमार थी। उसे देखने हालचाल पूछने का डांवाडोल इरादा मेरे मन में था। चुनांचे रात घिर आने के साथ-साथ ही मैं उसके घर की तरफ रवाना हो गया। दरियागंज में दो कमरों का एक अच्छा सा फ्लैट उसने ले रखा था।

राजी घर में ही थी। कमरे में हर चीज बड़ी बेतरतीबी से पड़ी थी। राजी बीमार तो नहीं लगती थी, पर कुछ उदास और परेशानी के आसार चेहरे से ज़रूर टपक रहे थे। मैंने पूछा, 'राजी तुम्हारी तबीयत कैसी है ? दो दिन से दफ़्तर नहीं आईं।'

उसने जवाब दिया 'दफ़्तर आने को जी नहीं चाहा सो नहीं आई, रही तबीयत की बात सो बिलकुल ठीक है।'

'पर पाल कह रहा था कि तुमने छुट्टी की दरख्वास्त में वजह बीमारी लिखी थी सो इसलिए ' राजी हंसी और बोली।

'तुम्हारा पाल भी दिलचस्प आदमी है। चंद दिन पहले मेरे पास से गुज़रता यह शेर कह गया।

'काबा किस मुंह से जाओगे ग़ालिब

शर्म तुमको मगर नहीं आती'

भई, मुझे काबा जाने की क्या जरूरत ! और अगर हो भी तो क्या इस मुंह से नहीं जा सकती। मां तो कहा करती थी चांद में भी दाग़ है पर तेरे चांद से मुखड़े में वह भी नहीं, खैर छोड़ो ' वह चारपाई से उठी, सामने वाली अलमारी खोली और उसमें से व्हिस्की की बोतल और दो गिलास निकाले।

'तुम शराब पीते हो ना ?'

'राजी तुम शराब पीती हो ?'

'मिस्टर वर्मा, कभी-कभी मैं सब कुछ पी लेती हूं उसने शराब गिलासों में उंढेली, पानी मिलाया। एक गिलास मेरी ओर बढ़ा दिया और दूसरा गटागट पी गई और कहने लगी।

'वर्मा, मुझे बताओ, क्या जवानी सुबह के सुनहले ख्वाब की तरह नहीं? क्या हुस्न और शबाब चंद लम्हों की कौसे कज़ा की मानिन्द सिर्फ धूल और रंगों की करामात नहीं? फिर भी मेरा दिल क्यों नहीं मानता? क्यों उसे ऐसा लगता है कि हुस्न और जवानी गैर-फानी हैं। क्यों मेरे जिस्म पर खूबसूरत कपड़े इतने फबते हैं? क्यों मैं दुनिया की हर खुशी की तरफ दीवानावार भागती हूं उसे किसी तरह एक दम पांव तले लेना चाहती हूं। क्यों मैं चाहती हूं कि दूर किसी पहाड़ी पर कुदरती नज़ारों से घिरा मेरा घर हो। खूबसूरत और गैर मामूली मेरा खाविंद हो जो मुझ पर जान दे। मेरे दस बच्चे हों जिन्हें मैं जिन्दगी भर लोरियां सुनाती रहूं। क्यों मुझे फूलों से बेहद प्यार है? क्यों मैं हर खूबसूरत चीज पर मरती हूं। क्यों? वर्मा तुम्ही बताओ क्यों?' और उसके साथ ही राजी बोल उठी।

'अब भला कोई इस 'क्यों' का क्या जवाब दे। पर वर्मा मैं पूछती हूं। क्या इन ख्वाहिशों में, इन जज्बों में गंदगी की बू आती है? क्या ये सब नायाब है? गुनाह है? गलत है?

राजी ने डबल पैग डाला और पी गई। राजी को आज यह क्या हो गया है?

'वर्मा, इस दुनिया में सबसे ज़्यादा मुशकिल चीज जानते हो क्या है? किसी खूबसूरत चीज को कायम रख पाना। चाहे वह एक मासूम जज़्बा हो या फूल। जिस्म हो या दिल। बहुत मुश्किल है, बेहद मुश्किल...'

आखिर मुझे बोलना पड़ा 'देखो राजी, तुम्हें लोग इतना गलत... मेरा मतलब है इतना बुरा क्यों समझते हैं?' ..

राजी मुस्कराई और बोली 'वर्मा, इसलिए कि मैं ग़लत और बुरी हूं शायद इसलिए मैं इन सबसे जुदा हूं। इस दुनिया में मिसफिट हूं। ग़लत क्या है जिसे दुनिया ठीक नहीं कहती? ठीक क्या है जो दुनिया की नज़रों में गलत नहीं? दरअसल में.. मैं . सुनो वर्मा... 'तर दामनी पे हमारी ना जाईओ ऐ शेख़।

दामन निचोड़ दें तो फरिश्ते वुज़ू करें। राजी ने यह शेर कहा और उठी और खिड़की के बाहर झांकने लगी। खामोशी का आलम तारी हो गया फिर वह बोली।

'शेर का मतलब समझते हो?'

मैंने कहा, 'कुछ-कुछ'

'मेरी किस्मत...खैर शेर समझना ही सब कुछ नहीं होता, कई शेरों को तो महसूस करने की जरूरत होती है।' और वह मेरे सामने कुर्सी पर आकर बैठ गयी और बोली।

'तुम मेरी तरह बुरे नहीं कहलाये जाते शायद इसलिए कि तुम्हें मेरे जैसा बनने का मौका नहीं मिला, मेरे जैसी बदकिस्मती नसीब नहीं हुई। तुम बहुत अच्छे हो क्यों

तुम्हारा बहुत कुछ पिनहा है। हम बहुत बुरे हैं क्योंकि हम कुछ छिपा नहीं पाये। अगर मुझ में गलत राह पर चलने की या गुनाह करने की कमजोरी है तो उसे खुल्लम खुल्ला करने की हिम्मत भी है। मुझे बुरका डालने की आदत नहीं। भगवान का घर अगर कहीं है और जब मैं वहां पहुंचुगी तो मैं अपने गुनाहों की माफी नहीं मांगूंगी सज़ा तलब करूंगी ? वहां से कभी लौटूंगी नहीं। भीख, दया और तरस से मुझे नफ़रत है। अगर दुनिया ने मुझे ठुकराया है तो मैं भी उसे ठोकर मारती हूं। मुझे किसी की परवाह नहीं, राजी ने झट से डबल पैग डाला और एक दम पी गई। मैं अजीब सी हालत में था।

'राजी, यह आज तुम्हें क्या हो गया है, आखिर बात क्या है ?'

'बात यह है वर्मा कि कि··· कि···मैंने जिन्दगी में बहुत कुछ देखा है, जाना है। मैं सब महसूस करती हूं शिददत से। पर वर्मा मुझे कभी-कभी कुछ समझ नहीं आता। मैं अभी तक समझ नहीं पाई कि मैं क्या हूं ? मेरा क्या मतलब है ? जो एक बोझ की तरह है जिसे उठाये मैं कहां से कहां आ गई हूं और कहां जाऊंगी ! इस अजनबी दुनिया के वीराने में, कौन अपना है, कौन पराया ? क्यों मुझ से वह हर चीज छीन ली गई जिसे मैंने चाहा, जिससे मुहब्बत हुई·· अब तो सोचती हूं कि अब अगर कभी मौत से मुहब्बत कर बैठी तो भगवान उसे भी मुझ से छीन लेगा और···'इस पर राजी हंस पड़ी और हंसती रही, हंसती रही और मै इस अजीब और नई सी राजी को देखता रहा और फिर मैंने देखा कि राजी की आंखों में यकायक आंसू लरज़ आये हैं। उसने उन्हें झट से पोंछ डाला और बोली 'आई एम सारी वर्मा, मैं इस वक्त सोना चाहती हूं तुम जाओ।'

मैं ढीठ सा उठकर खड़ा हो गया, 'गुडनाइट' कहा और चला आया। दूसरे दिन दफ़्तर आया और राजी से मिलने उसके कमरे में गया पर पता चला कि राजी आज छुट्टी पर थी। मैंने सहमे-सहमे पाल से राजी की कही सारी बातें सुना डालीं। वह आदत के खिलाफ चंद लमहे खामोश रहा और उसके बाद राजी को गालियां दीं। और फिर उसने बताया कि दफ़्तर के जासूसों ने राजीव की एक चिट्ठी चोरी से खोली और बंद कर दी जिसमें यह इत्तिलाह थी कि उसकी बचपन की एक जिगरी दोस्त जो नैनीताल के सैनेटोरियम में तपेदिक की मरीज़ थी चंद रोज़ पहले दम तोड़ गई।

दफ़्तर से छुट्टी होने के बाद मैं सीधा राजी के घर गया।

'साहब वह तो दिल्ली छोड़ चली गई' मालिक मकान ने मुझे बताया 'क्यों कहां, और किससे के साथ ?'

'एक हो तो बतायें। कितने थे साहब ? जाने कहां गई।'

दूसरे दिन जब मैं दफ़्तर आया तो हर आदमी बारी-बारी मेरे कमरे में खबर सुनाने आया। 'सुना आपकी राजी रिज़ाइन कर गई।'

सुना आपने —

राजी जाते वक्त किसी से मिली नहीं थीं। राजी चली गई। कहां ? क्यों ? यह ठीक से कोई भी नहीं जान पाया। जितने मुंह उतने ही क्याफे लगाये गये।

'उसने एक अंग्रेज से चोरी छिपे शादी कर ली और उसके साथ लंदन भाग गई।'

'दफ़्तर में बड़े बाबू ने उसका जीना दुश्वार कर दिया था। सो कश्मीर एक यार के साथ हमेशा के लिए चली गई' 'नहीं बम्बई भागी है बम्बई ! यहां मारकीट मंदी पड़ गई थी' और आखिरी अफ़वाह यह भी थी कि उसने खुदकशी कर ली।

ख़ैर दुनिया की इस भीड़ में राजी जाने एकदम कहां गुम हो गई। और उसकी याद हसीं ख़ब.वे-परेशां बन कर रह गई।

बीवी के काफी इसरार और तकरार पर उसे मायके छोड़ने मुझे देहरादून जाना पड़ा। चार दिन बाद जब दफ़्तर आया तो एक और हादसा पेश आया। पाल साहब रिज़ाइन कर गये थे। इतनी सी ही इत्तिलाह मौसूल हो सकी थी। अपने घर धर्मशाला लौट गया। शायद उन खुशियों की तलाश में जो वहां हमेशा के लिए छोड़ आया था।

इन दोनों अजीब दोस्तों की ग़ैर मौजूदगी मुझे शिद्दत के साथ महसूस हुई। मैं काफी अकेला हो गया था। अब मेरा दफ़्तर में बिलकुल जी नहीं लगता था। कभी वर्मा की खाली कुर्सी दिखाई देती, तो कभी राजी के कहकहे सुनाई पड़ते। और ढेर सी यादें लौट आतीं। राजी दफ़्तर के वीराने में ऐसे आई और चली गई जैसे बहार अपनी तमाम महक लिए गुजर जाये, और पीछे छोड़ गयी सिर्फ बदनामी। और पाल भी एक ऐसा दोस्त था जिसकी दोस्ती की छाप जिन्दगी भर रहती है।

वक्त की आंधी के सामने यादों के दिये या तो बुझ जाते हैं या उनकी लौ मद्धम पड़ जाती है। मैं भी अब बहुत कुछ भूलने लगा हूं।

और यहीं मेरी कहानी खत्म हो सकती है और हो भी जाती अगर अचानक कल पाल कहीं से टपक न पड़ता।

मैं दफ़्तर से लौट कर सीधा घर आ गया था। शाम को कोई प्रोग्राम नहीं था। इसलिए वक्त गुज़ारने की गरज से लेटा-लेटा कोई किताब पढ़ रहा था। रात के साये घिर आये थे। अचानक दस्तक हुई दरवाजा खोला और सामने पाल खड़ा था। 'अरे पाल तुम।'

मैंने लपक कर उसे गले लगा लिया। काफी दुबला पतला और फटेहाल था। 'हां यार, हम पाल साहब फिर वापिस दिल्ली भाग आये हैं···अब के शायद हमेशा के लिए ' पर यकायक ग़ायब क्यों हो गये, बताये बगैर ही और न ही अब तक कोई चिट्ठी पता ही लिखा ? मेरी बात का जवाब न दे, उसने सिगरेट सुलगाई। मैंने फिर पूछा 'पर तुम ढेढ़ साल कहां ग़ायब कहां रहे ?'

'जहन्नुम में !' पाल ने जवाब दिया।

'अरे मज़ाक छोड़ो, दफ़्तर में यह खबर थी कि तुम घर लौट गये।'

'हां यार इरादा तो धर्मशाला लौट जाने का ही था। पर जाने क्यों उस दिन रेलबे स्टेशन पहुंच कर इरादा बदल गया और एकदम बम्बई का टिकट कटा लिया।'

'और अब तक बम्बई में ही रहे ?'

'हूं ··भाभी कहां है ?'

'वह यार मायके गई है'

'देखो जरा पानी और गिलासों का बंदोबस्त करो माल मैं साथ लाया हूं।'

'तुमने शराब अभी तक नहीं छोड़ी ?'

'मैंने कुछ भी छोड़ा मिस्टर वर्मा, बिलकुल वैसे का वैसा हूं और देखो इस वक्त मैं लैक्चर सुनने के मूड में बिलकुल नहीं हूं। पानी झट से लाओ और बिना रोक टोक मेरी बात सुन सकते हो तो सुनो।' मैं गिलास और पानी लाया। उसने बोतल खोली, कम्बख्त पूरी बोतल लाया था। दौरे जाम शुरू हुआ और उसके साथ ही पाल की बातें।

'यार वर्मा, बम्बई निहायत कमीनी जगह है। मसनूही और मतलबी लोग हैं वहां के। कोई किसी को नहीं पूछता। कोई किसी का नहीं —

'हैलो ! टाटा ! सी यू।' बस यही दोस्ती-यारी की इब्तिदा और इन्तहा है निहायत ही वाहियात !···' और उसने गालियों का सिलसिला जारी कर दिया। और साथ ही एक डबल पैग चढ़ा गया। और शुरू हो गया। 'रही औरतें तो इस वक्त छेड़ो ही मत। ·· पाल को नशा चढना शुरू हो गया था।

'औरत जात ही कमजात है। चाहे बम्बई की हो, दिल्ली की या जन्नत की। तुलसीदास ने कहा है···

'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी

सब ताड़न के अधिकारी' अर्थात् ·· वर्मा साहब चलो यही चीज जायज सही। पर अंग्रेज़ भी इसी नतीजे पर पहुंचे हैं। बर्नाडशाह ने कहा है 'फ्रेयलटी दाई नेम इज वो मेन' और वह कोटेशन वह दो-तीन बार दोहरा गया गिलासों में और शराब उंडेली। मुझे गिलास थमाते हुए अपनी नीट ही चढ़ा गया।

'कहते हैं भगवान ने छः दिन में सारी दुनिया बनाई और फिर एक दिन आराम किया। एक दिन में आदमी बनाया फिर औरत बना बैठा। उस दिन से न तो भगवान आराम कर सका और न ही इंसान। ·· हां तो जनाब यह बात थी !·· हां तो क्या बात थी··· 'पाल को काफी नशा चढ़ गया था कुछ लमहों के लिए वह खामोश रहा फिर बोला 'तुम निहायत बेवक़ूफ़ नहीं तुम चु ··'

राजी के बारे में तुमने नहीं पूछा ?'

'अरे तुम राजी के बारे में जानते हो, यहां तो लोग ' मैं झट बोला। पाल अपने गिलास में शराब डालने लगा। 'मिस्टर वर्मा, वह दफ़्तर से तंग आकर नहीं भागी थी। किसी बड़े आदमी का चक्कर उसे बम्बई ले गया···'

'अच्छा वह बम्बई गयी थी, तुम वहां उसे मिले ? पाल ने गिलास मुंह से लगाया और झट खाली कर गया। 'वर्मा, उसने जहां कई चक्कर चलाये पर यार कम्बख्त की जवानी की दाद देनी पड़ती है। दिल खोल के खर्च की पर फिर वैसी की वैसी। कई जाल फेंके उसने और आखिर एक दिन खुद जाल में फंस गई। फिलम डायरेक्टर 'अ···के चक्कर में आई। यारों ने हीरोइन बनाने का झांसा दिया। अपना दामन छुड़ाने की गरज